सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

ओ३म्

# महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : १ अंक : 10 १ अक्टूबर २०१५ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० ₹ वार्षिक

अगर स्वामी दयानन्द न हमारा नाखुदा होता । न हम होते न तुम होते न कश्ती का पता होता ॥
फरिश्ता बन के ऐ स्वामी कहीं से तू चला आया, हमारे हाल पर वरना फलक भी रो उठा होता ।

## 132 वां ऋषि स्मृति सम्मेलन की प्रमुख झलकियाँ

नवनिर्मित यज्ञशाला में यज्ञ आरम्भ करते हुए

# कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

## महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों का प्रचार-प्रसार व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना

# महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

वर्ष : 1 अंक : 10

आसोज संवत् २०७२

अक्टूबर २०१५

सृष्टि संवत् १९६०८५३११६

सम्पादक मण्डल :

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएडा

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. धर्मवीर, अजमेर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

विशेष : **महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं । उनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है ।

कार्यवाहक सम्पादक :

दुर्गादास 'वैदिक'

99293-92335

mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org.

www.dayanadsmritinyas.org.

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर

वार्षिक शुल्क :150 रुपये

आजीवन शुल्क : 1100 रुपये (15 वर्ष)

पायें, पढ़ें, पचायें

| | क्या | कहाँ |
|---|---|---|
| 1 | ईश्वर स्तुति-प्रार्थना | 4 |
| 2 | सम्पादकीय | 5 |
| 3 | सृष्टि रचना के मूल तत्व | 7 |
| 4 | मुक्ति से पुनरावृत्ति | 10 |
| 5 | महर्षि जीवन चरित्र और इतिहास | 11 |
| 6 | स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र चेष्टा...... | 19 |
| 7 | विजय दशमी | 22 |
| 8 | शीत ऋतु में आहार-विहार | 26 |
| 9 | स्रोत का फैलाव....... | 28 |
| 10 | स्वामी दयानन्द की विचार धारा... | 32 |

SBBJ बैंक की खाता संख्या 51013406510

# ईश्वर
# स्तुति-प्रार्थना

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत्
एको अन्य चकृषे विश्वमानुषक्।।१५।।

—आर्याभिविनय: १।४।१४।४।।

व्याख्यान- हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर! आप इन्द्र हो। हे मनुष्यों! जिस परमात्मा का अन्त=इतना यह है, न हो* उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता। तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक, सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी, मध्य, निकृष्ट लोक, ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते, क्योंकि ''अनुव्यच:'' यह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है। तथा ''न सिन्धव:'' अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। ''नोत स्ववृर्ष्टि मदे'' वृष्टि प्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ), तथा बिजली गर्जनआदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते[1]। हे परमात्मन! आप का पार कौन पा सके। क्योंकि ''एक:'' एक असहाय अपने से भिन्न[2] स्वसामर्थ्य से हो ''विश्वम्'' सब जगत को ''आनुषक्'' आनुषक्त** अर्थात् उस में व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें? तथा ''अन्यत्'' आप जगत रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और लय यथाकाल करते हो, इससे आप का सहाय हम लोगों को सदैव है।।१५।।

---

* अर्थात् जो अनन्त हो।।

१. जैसे कोई मद में मग्न होके रण भूमि में युद्ध करे वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना।

- (महर्षि)

२. ''अपने से भिन्न'' यह स्वसामर्थ्य का विशेषण है। स्वसामर्थ्य शब्द से महर्षि ''प्रकृति'' का ग्रहण करते है।

** आ + अनुषक्त = आनुषक्त सर्वत्र व्याप्त। (सं.)

**-आर्याभिविनय से**

# सम्पादकीय

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 30 अक्टूम्बर 1883 को अजमेर की पूण्यभूमि में अपने शरीर को परमात्मा के चरणों में अर्पित करते हुए जो अन्तिम उद्‌गार जो प्रकट किये वो ये थे कि ''ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो'' इसी बात को महर्षि के अनन्य शिष्य शहीद-ए-आजम राम प्रसाद बिस्मिल फासी के पूर्व अपनी प्रिय व प्रसिद्ध कविता में कहा-

हे मालिक तेरी रजा रहे,
तू ही रह, तू ही रहै
न मैं रहूँ, न मेरी कोई आरजु रहे,
जब तक तन जान, रगों में लहू रहे,
तेरी ही आरजु व सतजू रहे।।

2. महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के प्रथम व तृतीय नियम से ही ये स्पष्ट कर दिया कि ''सब सत्य विद्या और पदार्थ विद्या से जाने जाते है उनका आदि मूल परमेश्वर है। व वेद ही सब सत्यविद्याओं का भण्डार है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है।

3. 29 सितम्बर 1883 को महर्षि दयानन्द को जोधपुर प्रवास मे जब जगन्नाथ द्वारा विष देने पर उसे क्षमादान देत हुए जो उद्‌गार प्रकट किए ''मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य (वेदभाष्यादि) सर्वथा अधुरा रह जायेगा। तुम नहीं जानते, इससे लोक हित की कितनी हानि हुई है। अच्छा विधाता की यही इच्छा है।''

4. महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' वेदार्थ बोध के लिए एक अनुपम ग्रन्थ है। महर्षि ने अपने वेद-भाष्य को ठीक-ठीक समझने और समझाने के लिए ही इसकी रचना की। पाठक इसके बिना महर्षि के वेद-भाष्य को समझ नहीं सकते। स्वयं महर्षि भूमिका का प्रयोजन बताते हुए वेद-भाष्य के विज्ञापन में लिखते है-

(1)जब भूमिका छप कर सज्जनों के दृष्टिगोचर होगी, तब वेद शास्त्र का महत्व जो बड़प्पन तथा सत्यापन भी सब मनुष्यों को यथावत् विदित हो जायेगा।

(2)भूमिका चारो वेदों की एक ही है।

(3) भूमिका के बिना, केवल वेद प्राप्त नहीं हो सकते।

(5) विस्तृत भूमिका के बनाने का महर्षि का यह भी प्रयोजन था कि वेद-विषयक जो भी पौराणिक मिथ्याा मान्यताएँ फैली हुई है, जिनके कारण पाश्चात्य विद्वानों को ही नहीं, अपितु कतिपय भारतीय

विद्वानों को भी वेदों के विषय में मिथ्या भ्रम हो गया है। जिससे वेदों का गौरव ही कम नहीं हुआ, किन्तु ''वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है'' अथवा ईश्वर प्रोक्त है, इसमें भी लोगों को भ्रम हो गया।

(6) दयानन्द की इस भूमिका से मिथ्या-मतों की पोल खुली है, वहाँ सत्यार्थ का प्रकाश होने से सत्यासत्य का निर्णय पाठक स्वयं कर सकते है।

(7)महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज को स्थापित करने का प्रयोजन इसके छठे नियम में अर्थात् संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति करना।

(8) वर्तमान में सारे संसार के देश, राष्ट्र, समाज, परिवार व व्यक्ति कम और ज्यादा अनेकोनेक सम्प्रदायों, जातीयों, धर्मों व मतों में बटे होने के कारण सभी अपने अपने स्वार्थ व हित साधनों में लगे होने के कारण कोई भी किसी को स्वीकार नहीं करने के कारण सम्पूर्ण मनुष्य जाति मानवता का आदिम शत्रु अज्ञान अन्याय व अभाव के कारण वे परमात्मा के सृष्टि रचने के प्रयोजन व मनुष्य जाति के होने के प्रयोजन विपरीत दुविधा रूपी बन्द गली में पहुंच चुके हैं जहाँ से कोई रास्ता नजर नहीं आता।

खड़े है हम सयासी फिर्का बन्धी के दो राहे पर, उनमें से कोई राह मंजिल तक नहीं जाती।
ईसारे कर रही मो से तुफान, कि तुम जिस किस्ती में बैठे हो, वह कभी किनारे लग नहीं सकती।।

(9) इस अवस्था में यदि कोई उपचारक हो सकता है तो महर्षि दयानन्द और कोई दवा हो सकती है तो संत-चित्त-मानव, परमेश्वर, वेद और वेदोक्त कर्म।

(10) महर्षि दयानन्द के सामने तभी साकार हो सकते जब हम आर्य दयानन्द के समान एक निष्ठ, त्यागी, तपस्वी, वेद-ईश्वर के प्रति समर्पित शिष्य, सेवक व सैनिक बने तो हमारी महर्षि के १३२ वे बलिदान दिवस पर हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। अन्यथा आर्यों आने वाला समय व परमात्मा का न्याय हमें माफ नहीं करेगा।

दे रहा है आदमी का दर्द तुम्हें आर्यों आवाज़ दर-दर।
रहे तुम चुप तो जमाना क्या कहेगा।
कर रही निलाम पतझड़ बहारों को,
रहे तुम चुप तो आर्यों जमाना क्या कहेगा।

-दुर्गादास ''वैदिक''

# सृष्टि रचना के मूल तत्त्व: दूसरा तत्त्व
# जीवात्मा व उसका स्वरूप

—आचार्य लक्ष्मीदत्त दीक्षित

पाञ्चभौतिको देह: ।।१।। शरीर पाँच भूतों से बना है।

(1) स्थूल देह पांच भूतों से मिलकर बना है।

(अ) भीतरी बाहरी मुख्य भाग पृथिवी तत्त्वों से बना हैं।

(ब) समस्थ रक्त तथा अन्य धातुओं एवं अवयवों का संश्लेषण जलीय तत्त्वों से बना है।

(स) इसी प्रकार पाचन संस्थान तथा जीवनोपयोगी उष्मा अग्नितत्त्वों से बना हैं।

(द) समस्थ प्राण एवं रक्त तथा अन्य धातुओं व मलों का देह में संचरण वायुतत्त्वों और बाहर भीतर समस्थ अवकाश प्रदान आकाश तत्त्वों से बने हैं। इस प्रकार स्थूल देह पंचभूतों का संघात है।

प्रश्न- क्या पंचभूतों के संघात से चैतन्य की उत्पत्ति हो सकती है ? यदि हां तो कैसे और नहीं तो कारण क्या है ?

उत्तर- नहीं हो सकती , क्योंकि प्रत्येक भूत में चैतन्य के न देखे जाने से संघात में भी भूतों का चेतन होना संभव नही । कारण भूतों का मूल उपादान तत्त्व सर्वथा जड़ है। जो है ही नही वह व्यक्त कैसे होगा ? बालू के एक कण में भी तेल नहीं तो बालू के ढेर में से भी एक बूंद न टपकेगी। इससे स्पष्ट है कि चेतना इनसे सर्वथा भिन्न हैं।

**<u>प्रतिपक्षी उपरोक्त पर विरूद्ध तर्क उपस्थित करता है कि-</u>**

<u>तर्क -</u> भूतों के मिलने से चैतन्य की उत्पत्ति सम्भव है , मद की तरह।

<u>समिक्षा -</u> सूक्ष्म रूप से देखने पर, मद्य में प्रयुक्त प्रत्येक द्रव्य में मादकता की प्रतीति होने से ही घोल में मादकता आती है। यहां यह ज्ञात होना ही चाहिये कि मद्य बनाने मे द्रव्य विशेष का ही प्रयोग ही क्यो किया जाता हैं ? मादक घोल के प्रत्येक द्रव्य में मादकता के अंश की तरह जगत के उपादान कारण मे किसी रूप में चेतना का अंश नहीं पाया जाता । इसलिए इन तत्त्वों के संघात से भी चेतना नहीं आ सकती। इस विषय में ज्ञातव्य है कि वस्तुत: मद्य से मदृ उत्पन्न नही होता। मद तो मद्य के पीने से चेतन को होता है।

<u>उपरोक्त पर प्रतिपक्षी की आपत्ति</u>

चैतन्ययुक्त शरीर ही आत्मा है, क्योंकि मरे पीछे जीव प्रत्यक्ष नहीं होता

<u>निराकरण</u>- <u>पदार्थ अदृष्ट होते है,उनका अभाव नहीं होता।</u>

किसी भी पदार्थ के न दिखने से उसे नष्ट हुआ नहीं मानना चाहीये। 'नष्ट' शब्द 'णशु-नश्' धातु से निष्पन्न हुआ है। <u>अत: इसका अर्थ 'अदर्शन' है</u> इसलिए अदृश्य होने से जीव का अभाव नही माना जा सकता। देह में चेतन का रहना या चेतन द्वारा शरीर को छोड़ कर चले जाना ही मृत्यु है। यदि समस्थ देह

खण्डनचेमण्डनहै तो किसी के छोड़ कर चले जाने का प्रश्न ही नहीं रहता। पर यह प्रत्यक्ष के विरूद्ध है । जहां तक आत्मा के प्रत्यक्ष न होने का सम्बन्ध है , यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्यक्ष गुणों का होता है और गुण-गुणी का समवाय सम्बन्ध होने से गुणो के द्वारा ही गुणी का प्रत्यक्ष होता है। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी अभिव्यक्ति होती है। यह अभिव्यक्ति ही उसका प्रत्यक्ष है।

**जीवात्मा के गुणों द्वारा प्रत्यक्ष होने पर अन्य प्रबल युक्ति देते है**

**युक्ति 1:- जीवात्मा के निकल जाने पर ज्ञानादि का अभाव हो जाता है।**

इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख, प्रयत्न और ज्ञान आत्मा के लिंग है। इसलिये जब तक शरीर में जीवात्मा रहता है तब तक ये प्रत्यक्ष रहते है। जीवात्मा के शरीर से निकलते ही, शरीर के ज्यों का त्यों रहते हुए भी इन सबका अभाव हो जाता है। इसी से जीवात्मा का प्रत्यक्ष है। यदि देह से भिन्न कुछ अन्य न हो तो देह के रहते ज्ञानादि का अभाव कभी न हो। अत: जिसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता आती है, वही जीवात्मा है। यह शरीर से भिन्न है। इसमें एक और हेतु है।

**युक्ति 2:-** व्यवहार में स्वतन्त्रता के कारण।

वातावरण से प्राप्त होने वाले उत्तेजको के प्रत्युत्तर में शरीर तुरन्त प्रति क्रिया करता है। व्यवहारवाद के सिद्धान्त के अनुसार यह प्रतिक्रिया सदा एक-सी होनी चाहिये और सभी प्राणीयों में एक समान होनी चाहिये। किन्तु व्यवहार में इसे भिन्न रूप देखे जाते है। एक व्यक्ति एक गाल पर थप्पड़ खाकर दूसरा गाल मारने वाले के सामने कर देता है, दूसरा चुप-चाप चला जाता है और तीसरा बदले में एक की जगह दो मार देता है। इसी प्रकार अत्यधिक कष्ट में जब एक मनुष्य भगवान को कोसने लगता है, दूसरा उसे भगवान की ईच्छा मानकर प्रसन्नतवदन कहता है- 'ईश्वर तेरी ईच्छा पूर्ण हो'। तात्पर्य यहा है कि, मनुष्य किसी ओजक के प्रत्युत्तर में किसी निश्चित प्रतिक्रिया में बंधा नहीं है, वरन् अनेक प्रकार की प्रतिक्रिया भी अभिव्यक्ति में स्वतंत्र है। यदि पाँच भौतिक शरीर से भिन्न कोई चेतना सत्ता न हो, तो मानवीय क्रियायें यंत्रवत् सदा सब में एक जैसी हो। वस्तुत: प्राणी की बौद्धिक प्रति क्रियाये किसी ऐसे जड़ पदार्थ का गुण नहीं हो सकती, जो शरीर में स्नायु मण्डल को बनाता है।

* विशेषता के कारण जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है

युक्ति 3: देहादि समस्त पदार्थ परिणामी, जड एवं नश्वर है। परन्तु जीवात्मा, नित्य, चेतन तथा अपरिणमी है। देहादि पदार्थ भोग्य अथवा भोग का साधन है। परमात्मा स्वयं भोक्ता है। शरीर का परिणामी और आत्मा का अपरिणामी होना हम हर समय अनुभव करते है। शरीर के परमाणु पतिक्षण बदलते रहते है। बुढ़ापे अथ्वा मृत्यु तक पहुँचते-पहुँचते शरीर बिल्कुल बदल जाता है। फिर भी हम कहते है कि यह वही व्यक्ति है जो कभी बालक था। हम समझते है कि इस नित्य बदलते शरीर में कुछ ऐसा है कि जो किंचित नहीं बदलता। कभी-कभी हम यह भी अनुभव करते है कि इस शरीर में स्वेच्छा से नहीं आये। अपितु किसी ने बलात् बन्दी बना दिया है। शरीर से भिन्न मानकर ही कभी-कभी हम इसमें से निकल भागना चाहते है।

आत्महत्या के लिये उद्यत हो जाना इसी भावना का परिणाम है।

**आत्मा देहादि संघात से भिन्न है- इसे सिद्ध करने हेतु कुछ अन्य हेतु**

(1) <u>शरीर के जलाये जाने पर पाप के अभाव से:-</u>

क्योंकि यह माना जाता है कि मरने पर पिछे मिट्टी रह जाती है, तब उसे सुख-दु:ख की अनुभूति नहीं हो सकती। इसलिये अब इसे जलाने में कोई दोष नहीं है। स्पष्ट है चेतन देह को जलाना पाप हैं। जड़ को जलाना निर्दोष है।

(2) <u>पाप-पूण्य का नाश न होने से (शरीर के जल जाने पर):-</u>

यदि देहादि संघात को आत्मा माना जाये तो उसके न रहने पर पाप-पूण्य भी न रहेंगे। क्योंकि जिस शरीर ने पाप-पुण्य किये थे वह तो भस्म हो गया। भस्म शरीर तो अब आने से रहा, इसलिये कर्त्ता शरीर के अभाव में पाप-पूण्य का अभाव और पाप-पूण्य के अभाव में संसार में सुख-दु:ख का अभाव होगा। यह प्रत्यक्ष के विरूद्ध है।

(3) कृतहानी और अकृताभ्यागम दोष के आ जाने से भी :-

खान-पान आदि अहार अवलम्बित होने से देह में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। प्रतिक्षण शरीर में कुछ बनता, बिगड़ता रहता हैस, इस प्रकार प्रत्येक क्षण शरीर अन्य का अन्य होता जा रहा है। जो शरीर आज है वह कल नहीं रहेगा। इसलिये देह को आत्मा माना जाये तो आज की देह का किये कर्म के फल को कल वाला शरीर भोगेगा, और कर्त्ता शरीर दण्ड पाने से छूट जायेगा। इस प्रकार देहादि संघात को आत्मा मानने पर देहादि प्राणी का प्रतिक्षण भेद होते रहने से <u>कृतहानि और अकृताभ्यागम</u> दोष प्राप्त होगा।

(4) षष्ठी विभक्ति के व्यवहार से भी:-

षष्ठी विभक्ति का व्यवहार वस्तुओं में भेद होने पर किया जाता है। यदि देह को आत्मा मान लिया जाये तो 'मैं हाथ', 'मैं आँख' ऐसा प्रयोग होना चाहिए, न कि 'मेरा हाथ', 'मेरी आँख'। इस प्रकार षष्ठी विभक्ति का व्यवहार स्वस्वामीभाव का द्योतक है। आत्मा स्वामी और शरीर उसका स्वत्व है। (क्रमश:)

**मनुष्य - अर्थात् जो विचार के विना किसी काम को न करे, उसका नाम "मनुष्य" है।**

✱ ✱ ✱ ✱

**उपासना - जिसके द्वारा ईश्वर ही के आनन्दस्वरुप में अपने आत्मा को मग्न करता है, वह "उपासना" कहाती है।**

## महर्षि दयानन्द का अंगद चरण

# मुक्ति से पुनरावृत्ति

-बिहारीलाल शास्त्री

ऋषि दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्त (सुलझे हुए हैं और अटल भी)

" प्रश्न- मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है।

उत्तर- विद्यमान रहता है।"

नवीन वेदान्तियों का कहना है कि मुक्ति प्राप्त करके जीव ब्रह्म में मिल जाता है और प्रमाण में वे मुण्डक उपनिषद् के इस वचन को प्रस्तुत करते हैं-

**यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय**। तथा विद्वान् नाम रूपाद् विमुक्तः **परात्परम् पुरुष मुपैक्ति दिव्यम्**।'' (मुँडक ३ खण्ड श्रुतिट)।

अर्थात् जैसी बहती हुई नदियाँ नाम रूप को छोड़ कर समुद्र में अस्त हो जाती हैं। इसी प्रकार विद्वान् (ज्ञानी मुक्त जीव) नाम रूप से मुक्त हुआ दिव्य परम पुरुष (ब्रह्म) को प्राप्त हो जाता है।

इस श्रुति से केवल यही भाव निकलता है कि जीव नाम रूप अर्थात् स्थूल शरीर का सम्बन्ध छोड़ कर अपने चेतन स्वरूप में रह जाता है। दृष्टान्त व उपमा एक देशी ही होती है। नदियों का नाम रूप मिट जाता है पर पानी का अस्तित्व तो रहता ही है। उस पानी का नाम बदल जाता है न कि अस्तित्व। श्री रामानुजाचार्य जी भी इस पर शंका उठाते हैं-

'' कि च जीवा श्रया या अविद्या या स्तत्व ज्ञानो दयानन्दयान्माशे सति जीवोन श्येद्धा वा न वा? यदि नश्पूयेत्स्व विनारा लक्षणो मोक्षः स्यात्।।''

(वे. २।१।१५)

अविद्या के नाश और ज्ञान के उदय से जीव भी नष्ट हो जाता है वा नहीं? यदि हो जाता है तो अपने स्वरूप का विनाश रूप हुआ मोक्ष। कविवर रत्नाकर जी ने भी उद्धव के लिए गोपियों से यही कहल वाया है-

'' बूँदता विलइ है बूंद विवश बिचारी की''

समुन्द्र में मिलकर जल बिन्दु अपना अस्तित्व खो देता है। तो जीव भी ब्रह्मरूप होकर अपने अस्तित्व को खो देगा फिर मोक्ष का आनन्द कौन भोगेगा? खीर खाने को चले तो स्वयं ही खीर बन गये, अच्छी खीर खायी!!!

दरिया और कतरे की मिसाल सूफियों की है, वह भी इसी प्रकार हेत्वाभास रूप है। दरिया और कतरा समुन्द्र और बूँद ऐसा अंशांशी भाव तो श्री शंकराचार्य जी भी नहीं भाजते; देखो:-

'' अंश इवांशो नहि निरवयवस्य मुख्योशः संभवति''

(वेदा २।३।४३)

जीव ईश्वर का अंश जहां ऐसा प्रमाण मिले वहाँ यह समझ लेना चाहिए कि भौतिक वस्तु ( बूँद और समुद्र ) जैसा अंशांशी भाव जीव ब्रह्म का नहीं है। निरवयय पदार्थ का अंशा नहीं होता। यहाँ मुख्य अंश से प्रयोजन नहीं है किन्तु एक है परिच्छिन्न चेतन दूसरा है सर्वव्यापी चेतन इस प्रकार चेतनता के कारण औपचारिकत अंशांशी भाव सम्बन्ध है मुख्य नहीं।

मुक्त जीव ब्रह्म के आनन्द को भोगता है जैसे कि राजा का भिन्न राजा के भोगों को प्राप्त करता है। परन्तु राज प्रबन्ध में उसका कोई अधिकार नहीं। वेदान्त ५० अध्याय ४ पाद ४ सू. १७ में कहा।

" जगद् व्यापार वर्जं प्रकरणपादसं निहित्वाच्च।। " जगत के कामों को छोड़ कर अन्य आनन्द होता है। जगत् प्रबन्ध का अधिकार नहीं पाता प्रकरण के असन्निहित होने से। अर्थात् यह प्रकरण ब्रह्म का है जीव का नहीं। श्री शंकराचार्य जी इस पर लिखते हैं–

"जगदुत्पत्यादि व्यापारं वर्जंपित्वाऽन्यअणि माद्यात्मक मैश्वर्यं मुक्तानाँ भवितु मर्हंति। जगब व्यापारस्तु नित्य सिद्गुद्धस्यैवेश्वरस्य"।

अर्थ– "संसार की उत्पत्ति आदि व्यापार को छोड़ कर अन्य अणिमा आदि सिद्धि रूप ऐश्वर्य मुक्तात्माओं को प्राप्त हो सकता है। सृष्टि रचना आदि तो नित्य सिद्ध ईश्वर के ही काम हैं।" शास्त्र ज्ञान शून्य हिन्दी के अद्वैतवादी विचारें कि यह भेद है या अभेद ?

शास्त्रज्ञ संस्कृत के पंडित भी जरा बुद्धि को जोर दें कि स्वामी शंकराचार्य जी के शब्दों में सृष्टि व्यापार कर्त्ता एक नित्य ईश्वर है तो आनन्द भोगने वाला जीव अनित्य है ईश्वर ठहरा वा नहीं ? मुक्त जीव का ईश्वर त्वअन्त्यि है तो मुक्ति अवस्था नित्य रही वा अनित्य ? यदि अनित्य है तो मुक्ति से पुनरावृत्ति सिद्ध है। क्योंकि अनित्य पदार्थ प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव दो अभावों के बीच की वस्तु है। और नित्य पदार्थ होता है वह दोनों अभावों से रहित होता है। एक अभाव स्पर्श करने वाला पदार्थ असंभव होता है। यदि मुक्ति का आदि है तो अन्त भी होना ही चाहिए। शास्त्रों में अनावृत्ति शब्द केवल एक सर्ग के लिए है, एक परान्त काल तक आवृत्ति नहीं होती। मुक्ति की अनावृत्ति को सदा मानकर पुराने आचार्य कैसे उलझे हैं यह भी दिखाना था पर लेख संक्षिप्त ही माँगा गया है अत: यहीं विराम देते हैं। पर हम यह घोषणा करते हैं कि स्वामी जी की दार्शनिक मान्यतायें उलझनों से रहती है।

दयानन्दस्य सिद्धान्त: शुद्धास्तर्क समन्विता:
न च खंडयितुं शभ्या: मायावाद विभोहितै:।

क्रमश:

## महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र की महत्ता पर प्रसिद्ध लेखक देवेन्द्रबाबू द्वारा लिखित भूमिका

## दयानन्द— जीवन-चरित्र और इतिहास

जो कष्ट हमने सहे वो जो परिश्रम हमने किये उनके लिए हम कदापि दु:खित नहीं हैं, क्योंकि इतिहास वा जीवन-चरित्र-सम्बन्धी घटनाओं की सत्यता निर्धारित करने के लिए निरन्तर छान-बीन, गहरे अनुसन्धान और बहुकालव्यापिनी गवेषणा की अत्यन्त आवश्यकता है। अनेक प्रकार के कूड़े-कर्कट से मिले हुए अन्न को जैसे सूक्ष्म और सुछिद्र-सम्पन्न छलनी से छानना आवश्यक है, वैसे ही ऐतिहासिक अथवा चरित्र-सम्बन्धी घटनाओं की यथार्थता निरूपण करने के लिए गवेषणा की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म छलनी का प्रयोग अनिवार्य है। इस देश के लेखकों में अनुसन्धानवृत्ति का विकास बहुत ही कम है। वे विषयविशेष के यथार्थ रूप का पुन: - पुन: निरूपण करने की चेष्टा नहीं करते, हाथ में गवेषण की छुरी लेकर विश्लेषण करने के वास्ते अग्रसर नहीं होते। इसलिए देश में ऐतिहासिक तत्त्व और चारित्रिक वृत्तान्त सत्य की प्रभा से प्रभावित नहीं होते और प्रमाण की दृढ़तर भित्ति पर प्रतिष्ठित नहीं होते। जब तक सत्य के दुरारोह श्रृंग पर पहुँचने की शक्ति न हो तब तक गवेषणा का आलोक हाथ में लेकर सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ना पड़ेगा। यूरोपवासियों में गवेषणा-वृत्ति का बहुत विकास है, इसलिए वे एक ही विषय पर ग्रन्थ-पर-ग्रन्थ प्रकाशित करने में समर्थ हो जाते हैं। एक ही महापुरुष के कई-कई जीवनवृत्त लिखे जाते हैं। गिबन ही के साथ रोम का इतिहास-लेखन समाप्त नहीं हुआ, उसके पश्चात् अन्य कई लेखकों ने रोम का इतिहास लिखा, हैलम के अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थाकारों ने मध्ययुग का इतिहास लिखा है।

स्वामी दयानन्द की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के निर्णय करने के लिए हमने इतने समय तक जो यत्न, परिश्रम और गवेषणा की है उसका उल्लेख हमने अपना कार्य, प्राधान्य वा गौरव दिखाने के अभिप्राय से नहीं किया है और न उसके परिचय देने के उद्देश्य से हमने इस ग्रन्थ की रचना की है। हमारे उसके उल्लेख से केवल यह दिखाने और समझाने का प्रयोजन है कि बिना स्वतन्त्र, सूक्ष्म और पक्षपातरहित गवेषणा के ऐतिहासिक घटनाओं और विचारों की सत्यता का निर्णय नहीं किया जा सकता।

इतिहास और जीवन-चरित्र एक ही वस्तु है। दोनों में यदि प्रकारगत पार्थक्य हो भी तो कोई प्रकृतिगत पार्थक्य नहीं है। महापुरुषों की चरितमाला इतिहास का प्रधान अंग वा उपादान है। महापुरुष ही संसार की महती घटनाओं के प्रवर्त्तक होते हैं। जो स्रोत समाज की मूलभित्ति तक को हिला देता है, जो स्त्रोत समाज-शरीर मे नई शक्ति का सञ्चार कर देता है, जो स्रोत राज्यविशेष के अभ्युत्थान वा विनाश का साधन होता है, जो स्रोत मानव-समाज के कुत्सित आचार-विचार और विश्वास को सर्वथा परिवर्तित कर देता है, महापुरुष ही उस स्रोत के उत्पादक हाते हैं। अकेले मार्टिन लूथर के नाम और कार्य से इतिहास के सैकड़ों पृष्ठ भरे पड़े हैं। मेजिनी और गैरीबाल्डी के कृत्य और विचारों से ही नवीन इटली के नवीन इतिहास का कलेवर बना है। अकेले गौतमबुद्ध के उपदेशों और सन्देशों के प्रभाव से ही प्राय: एक सहस्र वर्ष व्यापी भारत का इतिहास रचा गया है, इसलिए महापुरुष ही इतिहास की मूलभित्ति और आधार हैं। इसी कारण से

प्रख्यात नामा पण्डित फेड्रिक हैरिसन ने इस विषय में कहा है–

" जो लोग इतिहास से लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें इतिहासाध्ययन करने से पहले महापुरूषों के जीवन–चरितों का कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि यह एक ऐसी रीति है जिसके अनुसार इतिहास का अध्ययन बहुत सुगमता और सम्भवत: उपयोगिता के साथ किया जा सकता है।"–

मीनिंग ऑफ़ हिस्ट्री (इतिहास का अर्थ), पृष्ठ २३

अर्थात् इतिहास को समझने से पहले महापुरुषों को समझना चाहिए।

अतएव इतिहास के तत्त्वों का निर्णय करने के लिए जैसी गवेषणा की आवश्यकता है महापुरुषों के चरित को लिपिबद्ध करने के लिए भी वैसी ही गवेषणा की आवश्यकता है, परन्तु जिस देश में इतिहास नाम की कोई वस्तु न हो, जिस देश के वासियों के चरित्र में इतिहासवृत्ति के नाम की कोई वृत्ति देखने में न आती हो, जिस जाति के हृदय में इतिहास के प्रति कोई रूचि, अवस्था वा अनुराग दृष्टिगोचर न होता हो, उस देश वा उस जाति में गवेषणा चाहे वह कैसी ही स्वतन्त्र, कैसी ही सूक्ष्म और कैसी ही पक्षपातरहित क्यों न हो, कृतकार्य नहीं हो सकती।

हमारा यह कथन है कि इस देश में इतिहास नाम की कोई वस्तु वा कोई वृत्ति नहीं है किसी–किसी को बुरा लगेगा। कुछ लोग कहेंगे कि जिस देश में रामायण और महाभारत विद्यमान हों, जिस देश में बहुसंख्यक पुराण, उपपुराण वर्तमान हो, उसके विषय में यह कैसे कहा जा सकता है कि उसमें इतिहास नाम की कोई वस्तु नहीं है। जब संस्कृत साहित्य में इतिहास वा "इति हआस" शब्द पाये जाते हैं तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उस देश में इतिहास नाम की कोई वस्तु न हो? सज्जन ऐसा विश्वास रखते हैं वे वास्तव में यह नहीं जानते कि इतिहास किसे कहते हैं और उसका क्या स्वरूप है। जो बात सत्य है वह कहनी पड़ती है। **रामायण और महाभारत को इतिहास का नाम नहीं दिया जा सकता। वह काव्य, महाकाव्य है।**

रामायण का इतिहास न होना स्वयं उसके कर्त्ता महर्षि वाल्मीकि ने फल–श्रुति स्थल अर्थात् लङ्काकाण्ड के अन्तिम भाग में स्वीकार किया है और रामायण को काव्य कहा है।

**श्रृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्कीकिना कृतम्।**
**ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राघवात्।।** —स.१३०। श्लोक. ११६।।

जो इस काव्य को जिसे प्राचीन में वाल्मीकि ने बनाया था सुनते हैं, वे इस संसार में रामचन्द्रजी से अपने माँगे हुए सारे वरों को प्राप्त करते हैं।

ऐसे ही महाभारत भी काव्य या महाकाव्य है। आदिपर्व की अनुक्रमणिका में लिखा है– "मैं जानता हूँ कि तुमने जन्म से सत् और ब्रह्मविषयक वाक्य ही कहे हैं और तुम स्वप्रणीत ग्रन्थ को काव्य कहकर ही प्रसिद्ध करते हो इसलिए वह काव्य नाम से ही प्रसिद्ध होगा और जैसे आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्व–प्रधान है वैसे ही यह काव्यों में सर्वश्रेष्ठ होगा।"

अनेक राजाओं के कथा–कीर्तन, अनेक युद्धों के वर्णन और अनेक महर्षि–महापुरुषों के चरितोपाख्यानों से परिपूरित होने पर भी पुराण, उपपुराण इतिहास नाम से अभिहित होने के योग्य नहीं है। यदि कहो कि राजतरङ्गिणी तो इतिहास की कोटि में आती है, परन्तु राजतरङ्गिणी केवल एक विवरणमाला है

और इतिहास और विवरणमाला एक ही वस्तु नहीं है। आजकल इतिहास शब्द के अर्थों ने जो परिवर्त्तितरूप धारण किया है, हम समझते हैं, पाठक उससे अनभिज्ञ नहीं है। जिस समय जोसिफस प्राचीन यहूदी-जाति के इतिहास कीवेदी के आसन पर समासीन हुए थे, जिस समय इतिहास-रचना काल के पथ-प्रदर्शक वा पितृस्वरूप यूरोपीयगण विविध जातियों के इतिहास-प्रणयन में लगे हुए थे, उस समय जो अर्थ इतिहास शब्द के थे वे अर्थ अब नहीं है। अब इतिहास ने सुन्दरतर और उज्जवलतर मूर्त्ति धारण कर ली है। अब इतिहास को दार्शनिकता की भित्ति पर स्थापित कर दिया गया है। अब केवल विवरणमाला का समावेश ही इतिहास में नहीं है। केवल घटना परम्परा के विज्ञान और वर्णन करने से ही इतिहास नहीं लिखा जाता, केवल युद्धों के वर्णन, युद्ध-नेताओं की पदाति, अश्वारोही सेना की संख्या के निरूपण और युद्धों के **जय-पराजय के संवाद-लेखन ही ऐतिहासिक कर्म नहीं हैं। यह सब इतिहास के बहिरंग मात्र हैं। घटनवाविशेष का वर्णन करके यदि उसके कारणों को न बताया जाए, राज्य-विशेष के अभ्युत्थान के विवरण का लिपिबद्ध करके यदि उसके कारणों का निदर्शन न किया जाए तो उसकी इतिहास में गणना न होगी।** कल्पना करो कि आप बूअर-इंग्लिश-युद्ध का इतिहास लिखने बैठते हैं और केवल इतना ही उल्लेख कर कि 'बूअर सेना के इतने सैनिक क्षत-विक्षत हुए, अंग्रेजी सेना के इतने योद्धा हत-आहत हुए, अंग्रेजी सेना ने इस प्रकार जय लाभ किया और बूअरों को इतनी हानि पहुँचाई', अपने इतिहास को समाप्त कर देते हैं तो हम कहेंगे कि आपने इतिहास नहीं लिखा। यदि आप वास्तविक अर्थों में उस युद्ध का इतिहास लिखना चाहते हैं तो उपर्युक्त विषयों का समावेश करने के साथ-साथ आपको यह भी लिखना होगा कि युद्ध के क्या-क्या कारण थे और वह कारण-परम्परा कितने दिनों से दोनों जातियों के जीवन में उत्पन्न हो रही थी और किस विशेष घटना के उपस्थित होने पर उस कारण-परम्परा ने कार्यरूप धारण करके दोनों जातियों को तुमुल युद्ध में प्रवृत्त कर दिया, इत्यादि। इन विषयों को सूक्ष्मभाव से चित्रित किये बिना आपका इतिहास इतिहासपद वाच्य नहीं हो सकता।

सारांश यह है कि केवल कार्य का विवरण करने से काम नहीं चलता, उसके साथ कारण का भी उल्लेख करना चाहिए। ऐतिहासिक-शिरोमणि गिबन ने जिस भाव से रोम की क्रमोन्नति और अध:पतन का इतिहास लिखा है, जिस प्रणाली का अवलम्बन करके हैलम ने मध्ययुग के इतिहास का संकलन किया है, जिस रीति का अनुसरण करके सभ्यता का इतिहास प्रणयन किया है और जिस पद्धति का सहारा लेकर डॉक्टर मिलमैन ने लैटिन क्रिश्चैनिटि का इतिहास मानव-समाज के सामने रखा है, उस भाव, प्रणाली, रीति वा पद्धति का अनुगमन करके भारत में आज तक कोई इतिहास नहीं लिखा गया। अत: यह कहना पड़ता है कि हिन्दुओं का कोई इतिहास नहीं है, उनमें इतिहास-रचनाकला का अभाव है इस कारण भारत-भूमि में प्रकृत इतिहास रचना का मार्ग कण्टकाकीर्ण है और प्रकृत-जीवन-वृत्तान्त रचना का मार्ग भी सैकड़ों विघ्न-बाधाओं से परिपूर्ण है। हमने यथाशक्य सब कण्टक और विघ्न-बाधाओं को सहन करके भी स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित को लिखने का यत्न किया है। इस सम्बन्ध में हमसे जो कुछ बन पड़ा है, किया है। **हमने अपने ऊपर यह भार केवल इसलिए लिया है कि हमारा विश्वास है कि हिन्दूजाति के अभ्युत्थान और वैदिक धर्म की उन्नति दयानन्द के जीवनवृत्त की सम्यक् आलोचना के बिना नहीं हो सकती। दयानन्द ने**

**हिन्दू-जाति के रोग का निदान जिस सुन्दरता से कियाहै उस सुन्दरता के साथ और किसी सुधारक ने नहीं किया है।** दयानन्द हिन्दू-जाति के आदर्श सुधारक थे। अत: यदि हिन्दू-सन्तान हिन्दू बनी रहकर ही उठना चाहती है, हिन्दू बनी रहकर ही जगना चाहती है और हिन्दू बनी रहकर ही मुक्ति लाभ प्राप्त करना चाहती है, यदि वैदिक सभ्यता का फिर से जगत् में विस्तार होना है, हिन्दू-शिक्षा को उसके लिए संसार में प्रचरित होना है, हिन्दू-आदर्श को फिर से मानव-जाति में प्रतिष्ठित होना है तो **दयानन्द-प्रदर्शित मार्ग का अवलम्बन करने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं हैं।**

परन्तु खेद है कि भगवान् दयानन्द के जीवन-चरित्र सम्बन्धी सामग्री के एकत्र करने का कोई क्रमबद्ध और संगठित रीति से यत्न नहीं किया गया ' जिन्होंने जन्म ग्रहण करके सौराष्ट्र भूमि को समुज्जवल किया,य जिनके आविर्भाव से सौराष्ट्र भूमि ने अपने कण्ठ में गौरव की माला धारण की, उनके सम्बन्ध में उनके नाम, जन्मस्थान, बाल्यचरित के सम्बन्ध में सौराष्ट्रवासी सर्वथा उदासीन और आस्थाहीन हैं। मूर्त्तिपूजक हिन्दुओं से तो ऐसी आशा करनी ही व्यर्थ हैं, क्योंकि ऋषि ने मरणपर्यन्त मूर्त्तिपूजा पर अस्त्रनिक्षेप किया और काठियावाड़ में अधिकतर वल्लभ-सम्प्रदायवाले और स्वामी-नारायण-मतानुयायी बसते हैं और दोनों के मन्तव्य ही ऋषि की तीव्र आलोचना का विषय रहे हैं। सोमवेदी औदीच्यों में अब न विद्या है और न धन है, वे अधिकतर भिक्षोपजीवी हैं। उनसे यह आशा करना कि वे अपनी जाति के इस महापुरुष की जीवन -सम्बन्धी घटनाओं में कुछ मनोग्राहिता दिखाएँगे, दुराशामात्र है?

अस्तु, आर्यसमाज को इस विषय में जितना सचेष्ट होना चाहिए वह उतना सचेष्ट नहीं हुआ। यदि उसी समय जबकि आर्यसमाज स्थापित होने आरम्भ हो गये थे किसी सुशिक्षित लेखक को ऋषि के साथ रख दिया जाता और वह उनकी व्याख्या, शास्त्रार्थ और प्रश्नोत्तरों को लिपिबद्ध करता रहता तो उसके द्वारा नि:सन्देह संसार का बड़ा उपकार होता। श्रीमान् हरगोविन्ददास द्वारकादास कहते हैं कि स्वामीजी ने राजकोट में वेद-विषय पर ऐसा व्याख्यान दिया था कि उच्चता, गम्भीरता और युक्ति-युक्तता में, मेरी सम्मति में यह अपूर्व था। इस प्रकार के केवल एक व्याख्यान से ही संसार वंछित नहीं रहा है, बल्कि न जाने इस प्रकार के कितने अपूर्व व्याख्यानों से मानव-समाज को वंछित रहना पड़ा है। जिनका धार्मिक जीवन अशेष अभिज्ञता पर प्रतिष्ठित था, जिनकी शास्त्रदर्शिता, तार्किकता, मनस्विता सब प्रकार से असाधारण थी और विशेषत: जिनके निष्कण्टक ब्रह्मचर्य का निर्मल प्रभाव उस शास्त्रदर्शिता, तार्किकता और मनस्विता सब प्रकार से असाधारण थी और विशेषत: जिनके निष्कण्टक ब्रह्मचर्य का निर्मल प्रभाव उस शास्त्रदर्शिता, तार्किकता और मनस्विता को उज्जवल और सुतीक्ष्ण बनाता था, उनके मुख से निकला हुआ उपदेश नहीं, वरन् एक-एक शब्द लिपिबद्ध करने, मनुष्यों के आलोचना करने तथा संसार के कल्याणर्थ प्रचार करने योग्य था, परन्तु दु:ख है उस समय आर्यगण इस बात को हृदयङ्गम नहीं कर सके और किसी लेखक को नियुक्त करके स्वामीजी के साथ नहीं रख सके और रखते भी कैसे? आर्यसमाज वा आर्यसमाजियों के कलेवर को किसी स्वर्गागत वा अन्य अज्ञात लोकागत देवता ने तो परिपुष्ट किया ही नहीं, वे भी तो उन्हीं हिन्दुओं में से हैं, उनका अंग-प्रत्यंग भी तो उन्हीं हिन्दुओं से बना है, जिनके पास इतिहास नाम की कोई वस्तु

नहीं, जिनके चरित्र में कोई ऐतिहासिक नाम की वृत्ति लक्षित नहीं होती, जिनमें किसी घटनाविशेष को, चाहे वह कैसी ही गुरूतर वा आवश्यक क्यों न हो लिपिबद्ध करने की प्रणाली देखने में नहीं आती। फिर आर्यसमाजियों के चरित्र में ऐतिहासिक भावों का अविर्भाव कैसे हो सकता था? हम यद्यपि आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं, तथापि इस बात के कहने से नहीं रूक सकते कि आर्यसमाज का जीवन नितान्त दुर्बल है, ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त क्षीण है और उनमें किसी विषय को विचार की तथा विश्लेषणपूर्ण दृष्टि से देखने की शक्ति अत्यल्प है।

यदि आर्यसमाज स्वामीजी के देहान्त के पश्चात् ही किसी व्यक्ति को उनके जीवनवृत्त लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने के लिए नियत कर देता तो भी इतनी अड़चन न पड़ती, इतना परिश्रम न करना पड़ता और अनेक ऐसी घटनाओं का ठीक-ठीक पता लग जाता जिनका अब, इस कारण से कि उनके जानने वाले इस संसार में नहीं है, कोई पता नहीं लग सकता। बहुत-सी ऐसी बातें जो अब सन्दिग्धावस्था में हैं, स्पष्ट हो जातीं और बहुत-सी विघ्न-बाधाएँ जो अब मार्ग की अवरोधक हुई हैं, न होती, परन्तु आर्यसमाज ने इस विषय में कोई यत्न न करना आवश्यक नहीं समझा। उस आर्यसमाज ने, जिसके हाथ में स्वामीजी अपनी शिक्षा के प्रचार का कार्य सौंप गये थे जो आज सहस्त्र मुख से उनके गुण-कीर्तन करता हुआ नहीं थकता, उस आर्यसमाज ने, जो उन्हें ऋषि - पदवी प्रदान करने में अत्यन्त आग्रही है, जो उनके वचनों को निर्भ्रान्त तक माने को भी शायद उद्यत हो सकता है, यह आवश्यक नहीं समझा कि उनका एक सर्वांगपूर्ण जीवन चरित प्रकाशित करने का यत्न करें और न उस परोपकारिणी सभा ने ही जिसे स्वामीजी ने अपना उत्तराधिकारी बनाया, इस विषय में कुछ ध्यान दिया। कितनी घोर कर्त्तव्यच्युति है! कितनी अतुलनीय कर्त्तव्यग्लानि है!!

विगत चालीस वर्षों में जब भारत की जनसंख्या के चालीस भागों में से एक भागों में एक भाग दयानन्द के अधिकृत हो गया है, भारतवासियों में से तीन-चार लाख मनुष्यों के हृदय पर दयानन्द ने अपना आसन जमा लिया, सैकड़ों पाश्चात्यालोकप्राप्त, पाश्चात्य-भव-परिपुष्ट हिन्दू सन्तानों के जीवन का आदर्श स्वामी दयानन्द की शिक्षा और संसर्ग से परिवर्तित हो गया है, दयानन्द का स्थापित किया आर्यसमाज के प्राय: सभी भागों से अपनी शाखाओं का विस्तार करने में समर्थ हो गया है, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैनप्रभृति धर्मों और अंग्रेज राजपुरूषों ने उसे प्रबल और प्रधानशक्ति मान लिया तो यह कौन कह सकता है कि और चालीस वर्ष वा सौ वर्ष पीछे लाखों हिन्दू व अन्य मतावलम्बी दयानन्द के नाम पर अपनी प्रीति और भक्ति की पुष्पांजलि अर्पित नहीं करेंगे? कौन कह सकता है कि हिमालय के उपत्यकाप्रदेश से कन्याकुमारी तक सारे स्थानों में भारतभूमि के अधिकाश स्थलों में दयानन्द का प्रभाव प्रतिष्ठित नहीं होगा? कौन कह सकता है कि आर्यसमाज उस समय बहुशाखा-प्रशाखासमन्वित एक विशाल वृक्ष के समान भारतभूमि में बद्धमूल न होगा। बुक्क राजा का मन्त्रित्व प्राप्त करके सायणाचार्य जिस वेदभाष्य का प्रणयन कर गये हैं, यदि वह वेदभाष्य प्राय: ५०० वर्ष के भीतर ही इतना प्रचलित हो गया है और हिन्दुओं का अधिकांश उसे स्वीकार करने लगा है तो कौन कह सकता है कि अपने जीवनभर ज्ञान

की आराधना करके अपने चरित्र में अखण्ड ब्रह्मचर्य का उज्जवल दृष्टान्त दिखाकर दयानन्द जिस वेद भाष्य की रचना कर गये हैं वह वेदभाष्य पांच सौ वर्ष पीछे लाखों मनुष्यों के सम्मान का पात्र नहीं होगा? कौन कह सकता है कि इस देश क भावी वंशीयगण शंकर और रामानुज के आचार्यत्व को इतनी प्रगाढ़ श्रद्धा और सम्मान के साथ ग्रहण नहीं करेंगे जितनी श्रद्धा और भक्ति के साथ ग्रहण करेंगे जितनी श्रद्धा और भक्ति के साथ अब करते हैं? कौन कह सकता है कि भारत की आचार्य-मण्डली में स्वामी दयानन्द आचार्यशिरोमणि का पद प्राप्त करेंगे? क्या दयानन्द दिवाकर के मध्याह्निक विकास के समय तत्कालीन मनुष्यों के मन में स्वतः ही यह प्रश्न नहीं उठेंगे कि ये दयानन्द कौन थे? वे किस कुल या परिवार में जन्म लेकर समस्त भारत को धन्य कर गये हैं? कौन भाग्यवान् पिता इस पुरूषरत्न के जन्मदाता थे? यदि इन सब विषयों का निर्धारित, निश्चित और प्रमाणित विवरण न रहेगा तो इसमें कुछ भी संशय नहीं है कि भावी वंशीयगण बड़ी गड़बड़ में पड़ेंगे और नाना प्रकार के मत प्रकट करेंगे और विरोधी पक्ष बहुत प्रकार की अलीक और अवास्तविक बातों के प्रचार में अग्रसर होंगे? अतः हम भारत के इतिहास की रक्षा के नाम पर और दयानन्द-चरित्र के गुरूत्व और सर्वांगीणत्व के नाम पर सहस्त्र बार यह बात कहेंगे कि स्वामीजी की जन्मभूमि आदि के विवरण का प्रामाणिक भित्ति पर स्थापित होना नितान्त आवश्यक है।

काल के अनागत स्तर में जो कुछ होने वाला है वा जिसके होने की पूरी संभावना है वह काल के वर्तमान स्तर का आश्रय लेकर ही होगा। सदा ऐसा ही हुआ है अब भी ऐसा ही हो रहा है, अतः हमें यत्न करना चाहिए कि हम स्वामीजी के विषय में यथाशक्य सब बातें स्पष्ट रूप से स्थिर कर जाएँ ताकि आनेवाले समय में किसी को उनके विषय में भ्रम न रहे। हम देख रहे हैं कि अब भी कई दुष्ट दुरभिसन्धि-प्रचलित मनुष्य उनके जन्म-स्थानादि के विषय में नाना प्रकार की मिथ्या बातों के प्रचार में लगे हुए हैं। हमें विश्वास करना चाहिए कि स्वामीजी के जीवन, उनकी शिक्षा, उनके सिद्धान्त यहाँ तक कि उनके सामान्य कार्य भी भारत के भावी वंशीयगण की गुरूतर आलोचना के विषय होंगे। उनकी बातों से लेकर उनकी शिक्षा के विरोधी सहस्त्रों मनुष्य प्रत्येक दिशा में समालोचना के सुतीक्ष्ण बाणसमूह का निक्षेप करेंगे। ऐसी दशा में यह बहुत ही अच्छा होता यदि स्वामीजी अपनी मृत्यु से पहले अपने नाम और जन्म-स्थानादि की कथा प्रकाशित कर देते, परन्तु दुःख का विषय है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया या वे ऐसा नहीं कर सके।

जैन सम्प्रदाय बहुत दिन से स्वामीजी का घोर द्वेषी चला आता है। पं. जियालाल नामक जैन ने कई वर्ष हुए एक मिथ्यापूरित निन्दोक्तिपूर्ण पुस्तक 'दयानन्द-छल-कपट-दर्पण' नामक प्रकाशित की थी। उसमें जो बाते लिखी है उनका कोई प्रमाण नहीं और न कोई प्रमाण हो सककता है वह सर्वथा निराधार और निर्मूल हैं। ऐसी ही अलीक घटनाओं से उक्त पुस्तक का कलेवर बना है। ऐसी पुस्तक की समालोचना करनी तो दूर रही, उसका नामोल्लेख करना भी निष्प्रयोजनीय है।

स्वामीजी के चिरवैरी, देवसमाज लाहौर के स्थापक सत्यानन्द अग्निहोत्री ने एक बार अपने एक शिष्य को मौरवी भेजा कि वहाँ से स्वामीजी के सम्बन्ध में कुछ मिथ्या और ग्लानिकर समाचार संग्रह करके

ले आवे, परन्तु शिष्य अपने देवगुरू की सदिच्छापूर्ति में अकृतकार्य रहा और निष्फल होकर लौट आया। इसके कुछ दिन पीछे मौरवी महाराज के पुरोहित कवि नानाजी पुरूषोत्तम लाहौर आये और उस शिष्य का उसके साथ साक्षात्कार हुआ। शिष्य उन्हें देख गुरू के पास ले-गया और उन्होंने राजपुरोहित को कुछ प्रलोभन दिखाकर उनसे कहा कि आज यह लिख दें कि "दयानन्द छल-कपट-दर्पण" में लिखी हुई बातें सत्य हैं, परन्तु उन्होंने इस बात को स्वीकार न किया और अपने मन में देवगुरू के प्रति घृणा के भाव लेकर वे लौट आये। यह सच है कि अग्निहोत्री सत्यानन्द मिथ्या मेघ की सृष्टि करने के यत्न में समर्थ नहीं हुए और उनका पुनीत उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, परन्तु यदि पूरा हो भी जाता तो सत्य बहुत दिनों तक छिपा नहीं रह सकता था। मेघ छोटा हो वा बड़ा, तरल हो वा गम्भीर, बहुत समय तक सहस्त्ररश्मि को अस्तमित करके नहीं रह सकता। ऐसे ही मिथ्याके सहस्त्र प्रचार से भी सत्य का सूर्य बहुत काल तक अस्तमित नहीं रह सकता। सत्य को कोई लाख यत्य से छिपाए, परन्तु वह एक-न-एक समय अवश्य ही प्रकट होकर रहेगा। यह सत्य है कि सत्य की शक्ति चिरकाल तक अजय और अक्षुण्णा की आवश्यकता है, परिवेष्टनीय शक्ति के विश्लेषण के लिए घटनाओं का यथार्थपूर्ण अवधारण करके उनके प्रभव को स्पष्टरूप से दर्शाना नितान्त कर्त्तव्य है। यदि ऐसा न किया जाए तो दुर्जनों को अपने मिथ्या जाल फैलान का सु-अवसर मिलता है। पाठक स्वयं देख सकते हैं कि यदि आर्यसमाज ने यत्नपूर्वक स्वामीजी के जन्मस्थान, परिवारादि का निर्धारण कर दिया होता तो जैनी जियालाल और अग्निहोत्री जैसे विरोधियों को ऐसे दु:साहस का साहस न होता।

**उपसंहार:-**

अब हमारा दयानन्द-परिक्रम व्रत परिसमाप्त हो गया। संन्यासी परमहंसों के गङ्गापरिक्रम के समान दयानन्द-गङ्गा के परिक्रम का कार्य शेष हो गया। परमहंसगण गङ्गा की उत्पत्ति-भूमि से आरम्भ करके गङ्गा किनारे-किनारे विचरते हुए गङ्गासागर तक गमन करके अपने परिक्रम का कार्य समाप्त करते हैं। हमने भी दयानन्द के जन्म-गृह से आरम्भ करके उनकी श्मशान-भूमि तक पर्यटन किया हैं। टंकारा से, जिसके जीवापुर मुहल्ले के जिस घर में उन्होंने जन्म लिया था, आरम्भ करके अजमेर के तारागढ़ के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से उस निदारूण श्मशान-भूमि की देखकर आये हैं जहाँ उस भारत के सूर्य के दिव्यदेह को चितानल ने कुछ मुट्ठीभर भस्म परिणत कर दिया था। जैसे गङ्गापरिक्रमकारीजन गङ्गा के दैर्घ्य, गङ्गा के विस्तार, गङ्गा की विशालता, गङ्गा की भीषणता, गङ्गा के आवेग, गङ्गा के आवर्त्त, गङ्गा के क्षोभ, गङ्गा की तरंग, गङ्गा की कल्लोल और गङ्गा की हिल्लोल को देखते हैं, वैस ही हमने भी दयानन्द-गङ्गा का सब कुछ देखा है; इसके प्रत्येक तरङ्ग-निक्षेप पर दृष्टि दी है। कोई-कोई संन्यासी कहते हैं कि हरिद्वार से आरम्भ करके गङ्गासागर तक पर्यटन करने में प्राय: तीन वर्ष लगते हैं, परन्तु हमने दयानन्द-गङ्गा के परिक्रम में प्राय: पन्द्रह वर्ष काटे हैं, अत: दयानन्द गङ्गा हरिद्वारवाहिनी गङ्गा की अपेक्षा कुछ दीर्घतर है, कुछ विशालतर है। संन्यासी परमहंसगण अपने विश्वास में गङ्गा-परिक्रमण वा नर्मदा-परिक्रमण से कुछ-न-कुछ पुण्यार्जन करते हैं। पाठक ! तो क्या हमने दयानन्द-गङ्गा का परिक्रमण करके कुछ पुण्यार्जन नहीं किया है ?

### भारतीय स्वतंत्र संग्राम में

# आर्यसमाज की देन

## स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र चेष्टा और आर्य समाजः

**लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दः**

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास एक शताब्दी से भी अधिक काल की घटनाओं को अपने भीतर समाये हुए हैं तथा इसका क्षेत्र भी कश्मीर से लेकर कर्नाटक तथा गुजरात से लेकर आसाम तक विस्तृत है। पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश आदि हिन्दी प्रान्तों में जो राजनैतिक सरगर्मियाँ विगत १०० वर्षों में दृष्टिगोचर हुई उनका संचालन आर्यसमाज के नेताओं द्वारा ही हुआ। यहाँ इनका उल्लेख स्थालीपुलाक न्याय से करना उचित होगा। पंजाब में स्वामी दयानन्द से सीधी प्रेरणा प्राप्त कर लाला साँईदास, लाला लाजपतराय तथा स्वामी श्रद्धानन्द आदि ने स्वतंत्रता हेतु विभिन्न उल्लेखनीय कार्य किये। लाला लाजपतराय की ज्वलन्त देशभक्ति तथा उनके अपूर्व त्याग ने उन्हें 'बाल, लाल, पाल' की बृहत्त्रयी में स्थान दिलाया। लालाजी की राजनैतिक प्रवृत्तियों का सूत्र पात उनकी प्रसिद्ध रावलपिण्डी यात्रा से माना जा सकता है जिसके कारण उन्हें गिरफ्तार कर माण्ड जेल में बन्दी के रूप में रखा गया। साइमन कमीशन के विरोध में प्रदर्शन करते हुए लालाजी ने अपनी पीठ पर गोली पुलिस के डण्डों के प्रहार झेले जो अन्ततः ब्रिटिश शासन के लिए कफन की कील के तुल्य साबित हुऐ। लालाजी की मृत्यु का बदला लेने के लिये ही भगतसिंह ने अंग्रेज सार्जेण्ट साण्डर्स का वध किया था। लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोक सेवक संस्थान के माध्यम से देश सेवा को अपने जीवन का व्रत बनाने वालों में श्री पुरूषोत्तम दास टण्डन, स्व. लाल बहादुर शास्त्री, श्री अलगूराय शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा गाँधी के आह्वान पर कांग्रेस में आये। 1919 में अमृतसर के अधिवेशन में उन्होंने अपना स्वागत भाषण हिन्दी में पढ़कर राष्ट्रीय महासभा के मंच पर राष्ट्रभाषा को प्रतिष्ठित किया। रोलट एक्ट के विरोध में दिल्ली की जनता का नेतृत्व करते हुए इस निर्भीक संन्यासी ने अपनी छाती पर संगीनों का वार झेलने का जो साहस प्रदर्शित किया, वह हमारे स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि देश के अन्य भागों की अपेक्षा देशी राज्यों में राजनैतिक चेतना का विकास मंथर गति से हुआ। देशी रजवाड़े द्वैघ शासन से ग्रस्त थे। एक और राजपूत राजा तथा सामन्त इन राज्यों की प्रजा पर अपना सीधा नियन्त्रण रखे हुए थे तो दूसरी ओर ब्रिटिश शासन अपने एजेन्टों के द्वारा इन निरंकुश शासकों पर अपना पंजा कसे रहते थे। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में राजस्थान और मध्य भारत के अनेक राज्यों में भ्रमण कर वहाँ जन-जागृति का सूत्रपात

किया। उनकी योजना यह थी कि राजाओं को कुछ इस प्रकार सक्रिय किया जाय जिससे कि वे ब्रिटिश सत्ता से अपने को मुक्त कर सके। इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये वे क्रमशः इन्दौर, उदयपुर, शाहपुर, जोधपुर आदि रियासतों में पर्याप्त समय तक रहे तथा वहाँ के क्षेत्रीय नरेशों को अनेक राजनैतिक एवं कूटनयिक विषयों में परामर्श देते रहे।

राजस्थान की विभिन्न रियासतों में स्वतन्त्रता के जो आन्दोलन समय-समय पर चलाये गये उनमें आर्य समाजियों का प्रमुख योगदान रहा। बीकानेर की रियासत जो प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ नरेश महाराज गंगासिंह के शासन काल में सामन्ती अत्याचारों का शिकार हो रही थी उस समय श्री गंगानगर निवासी स्व. चौधरी हरिश्चन्द्र नैण तथा चूरू के स्वामी गंगादास के राजनैतिक कार्यों के पीछे आर्यसमाज की ही प्रेरणा कार्य कर रही थी। जोधपुर में राजनैतिक चेतना के जनक स्व. लोकनायक जयनारायण व्यास ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि 1919 में दिल्ली के चांदनी चौक में अंग्रेजों की संगीनों के सामने अपना सीना खोले स्वामी श्रद्धानंद की ओजस्वी मूर्ति का जब उन्होंने दर्शन किया तभी उनके हृदय में देश के लिये कुछ कर गुजरने की भावना बलवती होकर उमड़ पड़ी थी।

राजस्थान में भी सशस्त्र क्रांति की चेष्टायें आर्य समाज की प्रेरणा से ही अग्रसर हो पाईं। श्यामजी कृष्ण वर्मा का उदयपुर और अजमेर में निवास इसका कारण बना। बारठ केसरीसिंह और उसके पुत्र प्रतापसिंह तथा परिवार के अन्य सदस्यों ने स्वामी दयानन्द की प्रेरणा लेकर ही स्वतंत्रता के लिये बलिदान किये। खरवा के राव गोपालसिंह ब्यावर के सेठ दामोदरदास राठी आदि के क्रांतिपूर्ण कार्यों में भी आर्यसमाज की प्रेरणा ही दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार उदयपुर, जयपुर, भरतपुर, अलवर आदि राज्यों के प्रजामंडलों में सहस्त्रों अल्प ख्यात एवं अख्यात आर्य समाजियों ने सम्मिलित होकर देशी रियासतों की प्रजा को प्रजातांत्रिक अधिकार दिलाये।

## आर्यसमाज और ब्रिटिश सरकार:

भारत के स्वाधीनता संग्राम में आर्यसमाज के योगदान को निबंध की लघु सीमा में समाविष्ट करना संभव नहीं। तत्कालीन विदेशी सरकार आर्यसमाज को किस प्रकार देश व्याप्त समग्र राजनैति गतिविधियों की सूत्र संचालक समझती थी, यह साम्राज्यवादी विचारधारा के उग्र पैरोकार ब्रिटिश पत्रकार वैलेण्टाइन शिरोल की बहुचर्चित पुस्तक 'इण्डियन अनरेस्ट' की कतिपय विवेचनाओं से सिद्ध होती है, जिसमें उसने भारत के राजनैतिक जागरण का श्रेय मुख्यतः आर्यसमाज को ही दिया है। आर्यसमाज ने विदेशी आदर्शों का विरोध कर स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए एक ठोस आधार तैयार किया था। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए शिरोल ने लिखा-'एक प्रकार से आर्यसमाज हिन्दु-पुराण संहिता का विरोध करता प्रतीत होता है परन्तु प्रकारान्तर से वह पशिचमी आदर्शों के विरुद्ध ही विद्रोह जगाता है। आर्य समाज ने किस प्रकार भारतीयों को विदेशी प्रभाव से मुक्त होकर स्वाधीन होने की प्रेरणा दी तथा विदेशी शासन से संबंध विच्छेद को एक पुनीत

धार्मिक कर्त्तव्य की संज्ञा दी यह भी शिरोल ने स्पष्ट किया है।

ब्रिटिश शासकों को आर्य समाज के प्रति सदा ही सन्देह पूर्ण रूख रहा। सरकार का गुप्तचर विभाग समय-समय पर उच्च अधिकारियों को सूचना देता रहता था कि आर्यसमाज के सत्संगो, अधिवेशनों, उत्सवों और कार्यक्रमों में राजनैतिक षडयंत्र रचे जाते हैं तथा गुरूकुलों में परकीय शासन को उखाड़ फेंकने की शिक्षा छात्रों को दी जाती है। समय-समय पर ऐसे अनेक अभियोग आर्यसमाजियों पर लगाये गये जिनमें यह सिद्ध करने का प्रयत्न था कि आर्य समाज की शिक्षायें तथा स्वामी दयानन्द के उपदेश ब्रिटिश सत्ता को भारत से समूल नष्ट करने के लिये प्रेरित करते हैं। ऐसे ही एक अभियोग में अपना निर्ण देते हुए इलाहबाद के जिला मजिस्ट्रेट श्री प. हैरिसन को इतना तो मानना ही पड़ा था कि स्वामी दयानन्द की प्रेरणायें और प्रार्थनायें विदेशी शासनको अविलम्ब समाप्त करने के लिये तो नहीं कहती, परन्तु उनसे ऐसे सुधारों को बल अवश्य मिलता है जिनके द्वारा निकट भविष्य में हिन्दुओं (भारतवासियों) को स्वशासन की योग्यता प्राप्त हो सकती है।

**उपसंहार:**

निश्चय है आर्यसमाज ने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आज से दो सौ वर्ष पूर्व जब-तब तानाशाही शासन के षड्यंत्रों से भारत की स्वाधीनता को पुन: खतरा पैदा हो गया था और देश की आजादी और उसके प्रजातांत्रिक मूल्य सदा के लिये समाप्त किये जा चुके थे, तो आर्यसमाज के कुछ मूर्धन्य नेताओं और अनुयायियों ने पुन: अनेक यातनायें सहन कर देश के प्रजातांत्रिक चरित्र की रक्षा की। चौधरी चरणसिंह, प्रो. शेरसिंह, श्री ओमप्रकाश त्यागी, श्री करण शारदा, चौधरी कुम्भाराम, डा. प्रशांत कुमार वेदालंकार आदि सहस्त्रों आर्य समाजियों ने आपातकाल के अन्धकार को समाप्त करने में जो कुर्बानी दी उसे विस्मृत करना अकृतज्ञता ही होगी।

**-डॉ. भवानीलाल भारतीय एम.ए. पीएच. डी.**

**जो काम धार्मिक उत्तम मनुष्य से बनता है,**
**वह धन से कभी नहीं होता।**
**क्योंकि सब पदार्थ संसार में सुलभ है,**
**परन्तु शुद्ध मनुष्य का मिलना**
**दुर्लभ है।**
**(महर्षि दयानन्द द्वारा बाबू विश्वेश्वरसिंह को लिखे पत्र की पंक्तियाँ)**

आर्य पर्व से

# विजय दशमी

विजय दशमी का दिन हिन्दुओं का एक पवित्र दिन है, क्योंकि इसी शुभ मुहूर्त में मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने विजय यात्रा की थी और कुछ समय में ही लंकापति रावण का वध कर असंसख्य प्राणियों को उसके अत्याचारों से मुक्त किया था। राम की यह विजय धर्म की अधर्म पर अपूर्व विजय थी। राम ने रावण का राज्य छीनने के लिए लंका पर चढ़ाई नहीं की थी और न लंका की प्रजा को दास बनाकर उसका दोहन शोषण करने के लिए ही, अपितु आर्य परम्परा के अनुसार अत्याचार के उन्मूलन और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए। उन्होंने अपनी विजय से सच्चे वीर का आदर्श उपस्थित करके आर्य प्रथानुमोदित क्षत्रिय धर्म की महिमा का भव्य दिग्दर्शन कराया था। यूरोप और अमेरिका के वर्तमान युद्ध-देवता इस आदर्श को जितना शीघ्र अपनाकर क्रिया में लायें उतना ही विश्व शांति के लिए श्रेयष्कर है।

मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए अयोध्या या मिथिला से सैनिक सहायता प्राप्त न की थी। उन्होंने स्वयं अपने बल पर युद्ध किया था। विजय दशमी का दिन हमें उस दिन का स्मरण कराता है जब आर्य जाति का जाति-सुलभ तेज मौजूद था, जब वह अत्याचार के उन्मूलन और पीड़ितों के रक्षण के लिए शक्तिशाली अत्याचारी के मुकाबले में संगठनात्मक प्रतिभा के बल पर जंगली जातियों को ला खड़ा करना जानती थी। भगवान राम का हम सत्कार करते हैं क्योंकि उन्होंने आर्य जाति की मर्यादा के अनुरूप नेतृत्व और शोर्य प्रदर्शित किया और आर्य विश्वास की भावना को गौरान्वित किया था।

राम हमारे पूज्य हैं इसलिए नहीं कि वह भगवान के अवतार थे, वह दुनियों को मन चाहा नाच नचा सकते थे, उनके नाम का जाप करने मात्र से मनुष्य भवसगर से तर जाता है, वह सूर्य को पशिचम में उदय कर सकते थे, मुर्दे को जिवा सकते थे, समुद्र को सुखा और सूर्य-चन्द्र को पृथ्वी पर उतार सकते थे इत्यादि इत्यादि। हम उनकी पूजा इसलिए करते है कि वह आदर्श पुरूष थे और आर्य संस्कृति के मूर्तिमान प्रतीक थे।

इटली के पन्द्रहवीं शताब्दी के कूटनीतिज्ञ मेकावली ने अपने देश के सीजर बोर्जिया को आदर्श पुरूष बताया और अपनी संसार प्रसिद्ध पुस्तक 'राजा' में तत्कालीन यूरोपीय शासकों को उसका अनुकरण करने का परामर्श दिया।

इसके कई शताब्दियों बाद एक जर्मन दार्शनिक का जन्म हुआ जिसका नाम निट्शे था। इसने भी सीजर बोर्जिया को आदर्श पुरूष माना और आशा प्रकट की कि जर्मन युवक उसके अनुरूप होगा। निट्शे ने नेपोलियन को भी संसार का आदर्श पुरूष बताया और कहा कि संसार में वही जाति अन्य जातियों के ऊपर शासन कर सकेगी जिके युवकों में इन दोनो पुरूषों के गुण विद्यमान होंगे।

सीजर बोर्जिया और नेपोलियन में आकाश, पाताल का अन्तर है। नैपोलियन के प्रतिभावान योद्धा

होने में कोई संदेह नहीं किया जा सकता, पर सीजर बोर्जिया अपने समय का सबसे अधिक घृणित और पतित व्यक्ति था। उसने अपने भाई को मरवा दिया था। एक महिला का सतीत्व नष्ट किया था और अपनी माता के अपनी माता के अपमान का बदला लेने के लिए निर्दोष स्विस जनता को तलवार के घाट उतार दिया था। वह विष की उपयोगिता में विश्वास रखता और अपने शत्रुओं पर विजय पाने की चिन्ता में उचित और अनुचित का ध्यान रखना आवश्यक न समझता था। उसकी तुलना अरबिस्तार के हसन बिन सब्बाह से की जा सकती है जिसने शत्रु से छुटकारा पाने मामले में छुरे के उपयोग को धर्मादेश की पवित्रता प्रदान की थी।

मेकावली और निट्शे किसी व्यक्ति के आदर्श वा देवोपम होने के लिए उसमें जिन गुणों की उपस्थिति आवश्यक समझते थे उनमें भौतिक बल, कूटनीतिज्ञ, साम्राज्य लोलुपता और नृशंसता को विशेष रूप से महत्व दिया गया था। मैकावेली स्वयं कूटनीतिज्ञ था, इसलिए उसे सीजर बोर्जिया का चरित्र विशेष रूप से रचा। निट्शे का प्रादुर्भाव तब हुआ जब फ्रेंडरिक महान् और उसके कृपण पिता के द्वारा प्रूशिया में सैनिकवाद का प्रतिपादन हो चुका था। निट्शे को प्रूशियन सैनिक के कायदे कानून की पाबन्दी और निर्दयता विशेष रूप से रूचि और आशा प्रकट की कि संसार का भविष्य प्रूशियन सैनिक के हाथ में है। परन्तु चूंकि वह उसे पूर्ण रूपूण देवोपम पुरूष के रूप में देखना चाहता था इसलिए उसने सीजर का मित्रघात करने की मनोवृत्ति और नैतिक चरित्र हीनता को भी अपनाने की सलाह दी।

यह कहना आवश्यक है कि दूसरे महासमर के जर्मन नेताओं के कार्यकलाप और विचार बिन्दु पर निट्शे की शिक्षा की गहरी छाप लगी हुई थी।

परन्तु मेकावेली ने यूरोप के शासकवर्ग को सीजर वोर्जिया के जिन गुणों को अपनाने की सलाह दी थी और निट्शे ने प्रूशियन सैनिक को उसके जिन गुणों के कारण संसार का भावी शासक पूर्ण व देवोपम पुरूष समझा था वे गुण कहीं अधिक विकसित मात्रा में एशियाई विजेताओं में या मंगोल और तुर्क सैनिकों में विद्यमान थे।

आर्य संस्कृति के देवोपम पुरूष की विभावना इन मध्य एशियाई, इटालियन या प्रूशियन विभावनाओं से बिल्कुल भिन्न प्रकार की रही है। सीजर वोर्जिया ने अपने पिता का अनुराग स्वयं अपनाये रहने की इच्छा से भी अपने भाई की हत्या करवा दी। भरत ने राज्य मिलने पर भी उसे तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया और भाई का अनुगामी रहकर ही सन्तोष किया। नैपोलियन ने रूस के तत्कीन जार एलेक्जेंडर से चिरकालीन मित्रता की सन्धि की (जिस प्रकार हिटलर ने टेलिन से अमर सन्धि की थी) और अवसर पाते ही मित्र के साथ विश्वासघात किया। राम ने एक बहुत कमजोर आदमी का पक्ष ग्रहण किया और अन्त तक उसका साथ निभाया। औरंगजेब ने अपने पिता को कैद में डाला और भाईयों को मरवा दिया, ठीक उसी तरह जिस तरह उसके पिता ने राज्य प्राप्ति के लिए अपने भाइयों को मरवाया था। राम ने अपने दुर्बल, शक्तिहीन और स्त्रण पिता की आज्ञा का सहर्ष पालन किया और अपने भाई भरत के विरूद्ध षड्यन्त्र करने के गन्दे

विचार को भी मन में न आने दिया।

तो संसार का देवोपम पुरूष होने के लिए, किसी व्यक्ति के भीतर किस प्रकार के गुणों की उपस्थिति आवश्यक है? उन गुणों की जो उसकी बर्बर प्रवृत्ति को क्रीड़ा करने का अवसर देते है या उन गुणों की जो व्यक्ति की सद्वृत्ति को विकसित करके समाज के नित और निपर्धारित नियमों उपनियमों का पालन करने और उनमें विकास करने की प्रेरणा देते हैं? सीजर ईसाई था, नैपोलियन भी ईसाई था। मूसा के दस आदेश वाक्य प्रत्येक ईसाई को उस समय भी मान्य थे जैसे आज मान्य हैं परन्तु मेकावेली और निट्शे के आदर्श पुरूषों ने इन सभी आदेश वाक्यों के विरूद्ध आचरण किया। भारतयी समाज में भी नियम-उपनियम समाज के सृजन के आरम्भकाल से चले आ रहे है, और हम राम को परम श्रद्धा की दृष्टि से देखते है, क्योंकि उन्होंने उन नियमों का साधारण व्यक्ति की भांति पालन किया। उसी प्रकार हम बालि और रावण को घृणा और तिरस्किार की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उनमें से एक ने अपने भाई की स्त्री पर अधिकार करके और दूसरे ने समाज की रक्षा करने के स्थान पर उसमें आतंक फैलाकर सामाजिक नियमों और आर्य मर्यादाओं का उल्लंघन किया। इस प्रकार जहां मकावेली और निट्शे के दृष्टिकोण से बालि और रावण ही देवोपम पुरूष सिद्ध होंगे हमारी सृंस्कृति हमें ऐसे व्यक्तियों को समाज का शत्रु और ऐसे व्यक्तियों से समाज को मुक्त करने वाले व्यक्तियों को उसका रक्षक या पिता कहना सिखाती है।

राम को आर्य संस्कृति की विशिष्ट देन कहने में जरा भी अत्युक्ति नहीं हैं। जहां आर्य संस्कृति में मानवी विकास को प्राधान्य दिया गया है वहां श्रर्द्ध विकसित एशियाई और यूरोपीय समाज में भौतिक विकास और एशुबल को ही अपना आदर्श समझा गया है। यही कारण है कि अनेक तूफानों और बवण्डरों की भयंकर चपेटों में से गुजरने के बाद भी आर्य संस्कृति आज जीवित है। कोई जाति तभी जीवित रह सकती है जब तक वह मानवी विकास के प्राकृतिक कार्यकलाप में योग देती रहे। इतिहास बताता है कि जिन जातियों ने हत्या, व्याभिचार और मक्कारी को त्यागकर आगे बढ़ने से इंकार किया और इन्हीं को अपनी उन्नति और तुष्टि का साधन समझा वे नष्ट हो गई है।

आर्य संस्कृति के प्रतीक राम को हम नमस्कार करते हैं, हम पूज्या सीता के अज्ञात चरणों में भी अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि वह अपने आचरण की आर्य ललना के चरित्र पर अमिट छाप छोड़ गई है। उनका पतिव्रत्य और त्याग आर्य ललना को अपना सारा जीवन ही त्यागमय बनाने को प्रोत्साहित करता आ रहा है। लक्ष्मण का संयम और भरत का भ्रातृप्रेम अब भी हम में चरित्रबल उत्पन्न करते और स्फूर्ति प्रदान करते हैं।

हमारा आदर्श पुरूष मेकावेली या निट्शे या हसन बिन सब्बाह के देशवासियों के आदर्श पुरूष से सर्वथा भिन्न है। हमारा आदर्श पुरूष मानव-समाज के लिए मंगल, निस्पृहता और शान्ति का सन्देश लेकर आता है। हमें भगवान राम का वह चित्र प्रिय लगता है जिसमें वह अपने भाई और पत्नी के साथ नंगे शरीर

वन की खाक छान रहे होते हैं। उन्हें वह चित्र अच्छा लगता है जिसमें सीजर ने विष द्वारा किसी शत्रु को समाप्त किया हो या नैपोलियन किसी नगर पर तोप के गोलों की वर्षा कर रहा हो या प्रूशियन सैनिक आकाश की ओर टांगे फेंकता हुआ आगे बढ़ रहा हो। यही अन्तर है और इसी अन्तर में हमारी जाति के अमरत्व का रहस्य छिपा हुआ है।

विजया दशमी के दिन अपराजिता देवी के पूजन की उद्भावना भी पौराणिक काल में ही हुई थी। इसका स्रोत स्यात् सरस्वती की वाग्देवी की आकृति के समान कविकल्पना-प्रसूता अपराजय वा विजय की अपराजिता नाम्नी देवी के रूप की मूर्ति की कल्पना में विद्यमान हो, क्योंकि पौराणिकी षोड़शोपचार पूजा का सूत्रपात कविकल्पित रूपकों से ही हुआ। अपराजिता का अपभ्रंश पायता प्रतीता होता है, जो विजया दशमी का नामान्तर प्रसिद्ध है। भारत के अज्ञानान्धकार काल में इस अपराजिता देवी ने चण्डी तथा कालिका आदि के अनेक नामों और रूपों से इतना प्राबल्य पाया कि उनकी पूजा ने विजयादशमी के वास्तविक स्वरूप नीराजना विधि का बिल्कुल ढांप लिया और इस कपोल-कल्पित महाभयंकर कालिका चण्डी की रक्तपिपासा इतनी बढी कि उसकी मूर्ति के सामने इस पवित्र अवसर पर पुरूष से लेकर भैंसों और बकरों तक असंख्य प्राणियों की बलि होने लगी। विजयादशमी के दिन राजपूताने और महाराष्ट्र की भूमि निरपराध पशुओं के रक्त से लाल हो जाती थी। संन्तोष का विषय है कि दया धर्म के प्रचारकों के उद्योग से अब यह जघन्य अत्याचार कुछ रजवाड़ों और स्थानों में बन्द हो गया है, परन्तु आर्य धर्म के सेवकों के सामने अभी बहुत कुछ कार्य पूरा करने को शेष है। आर्य पुरूषों का परम कर्त्तव्य है कि वे संसार से विविध अत्याचारों का लोप करके विजयादशमी आदि पवित्र पर्वों के शुद्ध और सनातनस्वरूप का जनता में पुन: प्रचार करें और भारत के प्राचीन इतिहास का भी शोध करके वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओं की शुद्ध तिथियों को जनसाधारण में प्रचारित करें। तभी वे अपने वैदिक धर्मावलम्बी आर्य नाम को सार्थक कर सकते हैं।

आलस्य से विद्या की हानि होती है, पराये हाथ में जाने से धन की हानि होती है, धन की कमी से व्यापार की हानि होती है, झूठ बोलने से प्रतिष्ठा की हानि होती है, नेता के बिना दल की हानि होती है और ज्ञान के बिना सर्वत्र हानि होती है ।

शीत ऋतु में पालन-योग्य

# आहार - विहार

-अशोक कुमार पाण्डेय, आयुर्वेद रत्न

हमारे देश के अधिकांश भाग में , ज्यादातर तो गर्मी का ही प्रभाव रहता हैं शीतकाल का कुछ समय ही ठण्डा होता है। देश में हरे भरे जंगल कटते जा रहे हैं और नगरों - महानगरों में बहुमंज़िली (मल्टी-स्टोरी) इमारतें बढ़ती जा रही हैं। इस 'सीमेण्ट-सभ्यता' ने मौसम और वायुमण्डल को बहुत प्रभावित किया है। महानगरों में अधिक गर्मी का अनुभव होने का एक मुख्य कारण यह गगन चुम्बी इमारतों का बढ़ता हुआ विस्तार और हरे-भरे वृक्षों और हरियाली का कम होना भी है। बहरहाल, शीत ऋतु में पालन योग्य आहार-विहार से सम्बन्धित विवरण प्रस्तुत है।

सब ऋतुओं में शीत ऋतु की महत्ता और उपयोगिता क्या है और इस शीतकाल से लाभ उठाने के लिए हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। पहले, जो करना चाहिए उस आहार-विहार के विषय में चर्चा करते हैं। इसको 'पथ्य आहार-विहार' कहते हैं।

पथ्य आहार-विहार - स्वस्थ बने रहने के लिए हमें जिन तीन खम्भों की जरूरत होती हैं वे 'त्रय उपस्तम्भा इति - आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' (चरक) के अनुसार आहार, नींद और ब्रह्मचर्य हैं आयुर्वेद के आहार-विहार को औषधि और चिकित्सा से भी महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है- **'प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णोजसां च'** अर्थात् आहार ही बल, वर्ण और ओज का मूल आधार है। आहार की परिभाषा कहते हुए कहा है- **'आह्रियते अन्ननलिकया यत्तदाहारः'** यानि जो पदार्थ मुख के मार्ग से अन्ननलिका में प्रवेश करके उदर में पहुंचता है उसे आहार कहतें है। इस आहार को उचित और पर्याप्त मात्रा में ग्रहण किया जाना चाहिए ताकि **शरीर बल,वर्ण और ओज से भरपूर बना रह सके**। यह उचित और पर्याप्त मात्रा हर व्यक्ति की अलग-अलग होती है जैसा कि कहा है-**'मात्राशीस्यात। आहार मात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी'** के अनुसार आहार की मात्रा उचित तथा पाचक अग्नि के अनुकूल होनी चाहिए । अलग-अलग व्यक्ति के आहार की मात्रा उसकी पाचक-अग्नि अर्थात पाचन-शाक्ति के अनुकूल अलग-अलग होगी। इसका निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति को खुद ही करना होगा। यूं तो उचित आहार को ग्रहण करना प्रत्येक ऋतु में जरूरी होता है पर शीत ऋतु में सिर्फ जरूरी ही नहीं बल्कि अनिवार्य होता है क्योंकि शीतकाल में पाचक अग्नि बहुत प्रबल रहती है अतः उसके बल के अनुरूप मात्रा में आहार मिलना ही चाहिए और ठीक वक्त पर मिलना चाहिए अन्यथा शरीर को हानि होगी । पाचक अग्नि यानि जठराग्नि का कार्य बताते हुए शास्त्र ने कहा है--

आहारान् पचति शिखी दोषानाहारवर्जित : ।
दोषक्षये पचेद्धातून प्राणानधातुक्षये तथा ।। -क्षेम कुतुहल

अर्थात् पाचक अग्नि आहार को पचाती है यानि आहार रूपी ईधन को जलाती है । यदि उचित

समय पर उचित मात्रा में आहार न मिले तो आहार के अभाव में शरीर में मौजूदा दोषों को पचाती है, दोषों को पचाने के बाद इनका अभाव होने पर यानि दोष नष्ट हो जाने पर यह अग्नि शरीर की धातुओं को जलाने लगती है और धातुओं को जला डालने के बाद, यह अग्नि प्राणों को ही जला डालती है यानि प्राणों का नाश कर देती है । शीतकाल में यह जठराग्नि चूंकि बहुत प्रबल रहती है इसलिए इस ऋतु में उचित और अपनी पाचन शक्ति के अनुकूल मात्रा में ठीक वक्त पर आहार ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि शरीर की धातुओं का क्षय न हो । साथ ही आहार पोषक तत्वों से युक्त हो यह भी जरूरी है ताकि शरीर पुष्ट, सुडौल और बलवान बन सके ।

तो इस शीतकाल में सबसे पहला और महत्वपूर्ण कार्य यही है कि ठीक वक्त पर नियमित रूप से अपनी पाचन शक्ति के अनुकूल मात्रा में पोषक तत्वों से युक्त आहार खूब चबा-चबा कर खाया जाए । विहार के विषय में दो-तीन बातें बताना जरूरी है । शीतकाल का रहन सहन (विहार) अन्य ऋतुओं से अलग ढंग का होता है । इस ऋतु की दिनचर्या अलग ढंग की होती है । सुबह दौडना या वायु सेवन हेतु भ्रमण करना, व्यायाम या योगासन करना शरीर पर तैल मालिश करना इस ऋतु के मुख्य कर्म है । महिलाएं तैल मालिश न कर सके तो उबटन लगा कर स्नान किया करें ताकि त्वचा न सिर्फ स्वस्थ ही रहे बल्कि चिकनी, मुलायम और चमकीली रहे ।

<u>अपथ्य आहार-विहार</u>: इस ऋतु में रूखे हलके अति शीतल वात कुपित करने वाले बासे और कटु तिक्त-कषाय रस वाले पदार्थो का अति सेवन नहीं करना चाहिए ताकि वातजन्य व्याधियां जैसे जोड़ों का दर्द, गठियां, सायटिका आदि न हो । खटाई का अधिक प्रयोग न करें ताकि कफ का प्रकोप न हो और खांसी, श्वास, दमा, श्वसनिकाशोध यानि ब्रोंकाइटिस नजला-जुकाम आदि व्याधियां न हो । खटाई में इमली, अमचूर, खट्टा दही, आम का अचार वर्जित है, ताजा दही, छाछ, नीबू आदि वर्जित नहीं होते । शीत काल में देर तक भूखे नहीं रहना चाहिए ।

न करने योग्य विहार में, आलस्य करना, दिन में सोना, देर रात तक जागना अति शीत सहना आदि काम नहीं करना चाहिए । प्रतिदिन प्रात: स्नान अवश्य करना चाहिए । अति शीतल जल से स्नान नहीं करना चाहिए । शाम को भोजन के बाद देर रात तक जागना या शीत सहना उचित नहीं क्योंकि इससे आहार के पचने में विलम्ब होता है या अपच भी हो सकता है जिसकी सूचना खट्टी डकारें आने से मिलती है । शीत काल में शीत से और शीतल पदार्थो से अयोग अतियोग और मिथ्या योग नहीं होने देना चाहिए ।

जो व्यक्ति पूरे वर्ष भर तक बड़ी हरड के चूर्ण का सेवन रसायन के रूप में प्रत्येक ऋतु के अनुकूल अनुपात के साथ करते हों उन्हें शीतकाल की हेमन्त ऋतु (अगहन पौष मास) के दिनों में सोंठ चूर्ण के साथ और शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन मास) के दिनों में पीपल (पिप्पली) के चूर्ण के साथ समान मात्रा में आधा-आधा चम्मच मिला कर ताजे ठण्डे जल के साथ सेवन करना चाहिए ।

# आर्यसमाज का इतिहास

## स्त्रोत का फैलाव :

-इन्द्र विद्यावाचस्पति

## २. उपनिषदों का ज्ञानवाद

कर्मवाद बहुत बढ़ गया उसे अपर्याप्त समझ कर वेदों के ज्ञानांश की व्याख्या के लिए आरण्यकों और उपनिषदों की रचना हुई । पहली उपनिषद् ईशोपनिषद् है, वह यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय हे । शेष उपनिषदों ने उन्हीं की विचार-श्रृंखला का अनुसरण करते हुए गहरे ज्ञानतत्व की व्याख्या की है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपनिषदें साफ तौर से उस कर्मवाद का प्रतिषेध करती है, जो ब्राह्मण ग्रन्थों से झलकता है । इसलिए स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों से पीछे उपनिषदों की रचना हुई है ।

उपनिषदों में ब्रह्म की व्याख्या है, और उसके ज्ञान को सबसे मुख्य माना गया है । 'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा:' इत्यादि वाक्यों द्वारा उपनिषत्कारों ने स्थान-स्थान पर कर्म की निर्बलता बताई है । और 'निचायय तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' (कठ), 'तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम्' (कठ), 'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति व: पाराय तमस: परस्तात्' (मुण्डक) इत्यादि वाक्यों में ज्ञान का गौरव दिखाया है । उपनिषदों से ज्ञान की वह दार्शनिक लहर उत्पन्न हुई है, जो वैशेषिक से प्रारम्भ होकर वेदान्त में, और फिर वहाँ से विकृत 'खण्डनखण्डखाद्य' और 'पञ्चलक्षणी' में समाप्त हुई । जिस ज्ञान की गम्भीरता के लिए भारतवर्ष ने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उसका प्रारम्भ यहीं से हुआ ।

उननिषदों की प्रारम्भ की हुई ज्ञान-लहर का कहाँ-कहाँ तक प्रभाव फैला, इस विषय की विस्तार पूर्वक विवेचना यहाँ आवश्यक नहीं है । हम देख चुके हैं कि भारतवर्ष के दार्शनिक विचारों का पहला विस्तारसहित आविर्भाव उपनिषदों में हुआ और पीछे जितनी दार्शनिक शाखायें आविर्भूत हुई उनका बीज यदि वेद में था, तो उनका मूल उपनिषदें थी । भारतवर्ष से बाहर के दार्शनिक विचारों का कहाँ तक असर हुआ, इस विषय की विस्तृत विवेचना के लिए यह स्थान बहुत छोटा है । परन्तु संक्षेप में इतना बता देना अनुचित न होगा कि पुराने फारस, ग्रीस आदि देशों के दार्शनिकों ने उनसे बहुत सा लाभ उठाया था । मि० रिचर्ड गार्ब अपनी "Philosophy of Ancient India" नाम की पुस्तक में लिखते हैं-"फारस द्वारा ग्रीक विचारों के भारत से प्रभावित होने की ऐतिहासिक सम्भवता को बिना संदेह के मानना पड़ेगा, और उसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उन पर लिखे हुए विचार भारत से ग्रीस को प्राप्त हुए ।" थेल्स, एम्पिडोक्लीज, अनेक्टसागोरस, डिमोक्रिटस और सब से बढ़ कर पाइथागोरस ने भारत के दार्शनिक विचारों को खूब ही अपनाया था । यह सर्वसम्मत बात है कि यूरोप के सब दार्शनिक विचार ग्रीस के दार्शनिक

विचारों से प्रारम्भ होते हैं । इस प्रकार यह कह देना अयथार्थ नहीं कि यूरोप अपने दार्शनिक विचारों के लिए भारत का आभारी है ।

यहाँ यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि धार्मिक विचारो के इतिहास में दार्शनिक विचारों की चर्चा क्यों डाली गई ? इसका उत्तर यह है कि इन दोनों प्रकार के विचारों का आपस में बहुत गहरा संबंध है । ईश्वर की सत्ता एक सिद्धान्त है, परन्तु वह प्रत्येक दार्शनिक के विचार का पहला विषय है । जीवात्मा है या नहीं ? मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है या परतंत्र ? कर्मों का फल मिलता है या नहीं ? परलोक है या नहीं ? ये सब प्रश्न एक धर्माचार्य के लिए उतने ही आवश्यक है जितने आवश्यक कि एक तत्ववेत्ता के लिए है । धर्म के भिन्न-भिन्न रूपों पर दार्शनिकों के विचारों की छाप साफ नजर आती है । इस कारण यह मानना पड़ेगा कि भारत ने यूरोप को यदि दार्शनिक उपहार दिया है, तो यूरोप के धार्मिक विचार यह नहीं कह सकते कि हमने कुछ नहीं लिया । ईश्वर, जीव, परलोक आदि विषयों में ग्रीक तत्ववेत्ताओं द्वारा यूरोप को भारत ने बहुत कुछ दिया है, और यही धर्म की आधार-शिलायें है ।''

ब्रह्मणों और उपनिषदों द्वारा वेदों ने किस प्रकार संसार के धार्मिक विचारों को प्रभावित किया है, यह नीचे के चित्र से स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा ।

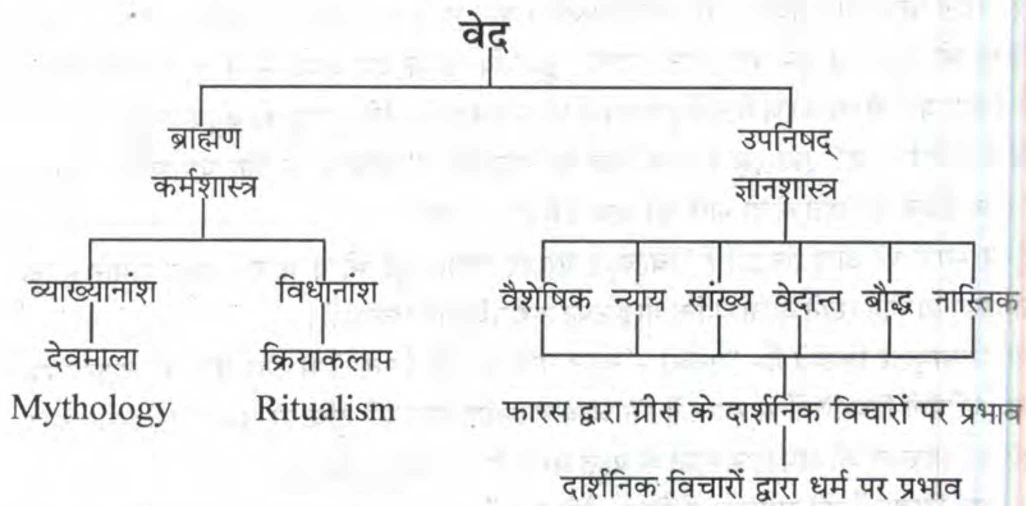


## पारसी मत

आर्य पुरुषों की एक धारा मध्य-एशिया से होती हुई ईरान में जा बसी। उस धारा के लोग पारसी कहलाये। उन लोगों का धर्म पारसी धर्म कहलाता है। वे अपने भाइयों के पुराने वैदिक धर्म को साथ ले गए थे परन्तु समय और स्थान के व्यवच्छेद से वह बहुत बदल गया।

उस समय पारसियों में एक धर्म का सुधारक उत्पन्न हुआ जिसने फिर से पुराने धर्म के उद्धार का यत्न किया। उस सुधारक का नाम स्पितामा जरदुस्त या पितामह जरदुस्त था। वह ध्यानावस्थित होने के लिए फारस से पूर्व की ओर गया और अपनी जाति के धार्मिक विचारों का सुधार करने का संकल्प करके वापस हुआ। इस समय हमें जरदुस्त से पूर्व के विकृत पारसी धर्म के चिन्ह नहीं मिलते। संशोधित हुआ पारसी धर्म विस्तारपूर्वक मिलता है। उसके देखने से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि जरदुस्त जिस धर्म का प्रचार करता था, वह आर्य धर्म की एक शाखा थी।

यहाँ इस विषय पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। सर विलियम जोन्स, प्रो. मैक्समूलर और डा.हाग आदि विद्वानों ने इसकी बहुत विस्तारपूर्वक और मार्मिक व्याख्या की है। उन लोगों ने बहुत अच्छी प्रकार से बतला दिया है कि पारसियों की धर्म पुस्त जन्दावस्ता की भाषा संस्कृत का रूपान्तर है, जन्दावस्ता के उपदेश वैदिक उपदेशों से ८० फीसदी मिलते हैं। पारसियों के कर्त्तव्य, धर्म और यज्ञ वैदिक क्रियाओं की छायामात्र है। हम यहाँ थोड़े से प्रमाण देकर ही संतोष करेंगे, क्योंकि यद्यपि विषय बहुत ही लम्बा और मनोरंजक है, तथापि हमारे पास स्थान परिमित है।

१. पहले भाषा को लीजिये। सर विलियम जोन्स जन्द भाषा के विषय में लिखते हैं, "जब मैंने जन्द भाषा के कोष को पढ़ा, तब मुझे वर्णनातीत आश्चर्य हुआ कि उसके दश शब्दों में से छः या सात विशुद्ध संस्कृत के हैं और कई तो व्याकरण से लगे हुए रूप में भी समान ही हैं, जैसे युष्मद् का बहुवचन युष्माकम्।" (एशियाटिक रिसर्च)। डॉ. हाग इस भाषा के बारे में लिखते हैं- " ब्राह्मणों के और पारसियों के पवित्र सूक्तों की भाषायें एक ही जाति के दो भागों की भाषायें हैं।" --एसेज।

दूसरे स्थान पर आप लिखते हैं "बिल्कुल बराबर न होती हुई भी वे भाषायें इतनी समान है कि संस्कृत का थोड़ा सा ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी झटपट उन्हें पहिचान सकता हैं।

प्रो. मैक्समूलर लिखते हैं- "उनकी -'यूगन बर्नौ फ' की किताबों से और बौप की तुलनात्मक व्याकरण की कीमती टिप्पणियों से स्पष्ट है कि व्याकरण और कोष की दुष्टि से जन्द भाषा अन्य-अन्य इन्डो-यूरोपियन भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत के बहुत समीप है।" (क्रिप्स वोल. १)

२. अब सिद्धान्तों की समानता लीजिए। वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों में से एक मुख्य सिद्धान्त वर्ण व्यवस्था का है। मनुष्य समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार भागों में बांटा गया है। पारसी धर्म में भी ये चार भाग रखे गए हैं।

प्रो. डार्मस्टाअ अपनी जन्दावस्ता की भूमिका में लिखते है:-

"हम इस डिंकर्ट" में चार श्रेणियों का वर्णन पढ़ते हैं, जो ब्राह्मणों के जाति उत्पत्ति संबंधी लेखों का बलपूर्वक स्मरण दिलाते हैं, और जो अवश्य भारत से लिया गया है।"

जन्द में जाति के पुरोहित, रथी, खेती करने वाला और हाथ से काम करने वाला ये चार भाग किये

गए हैं।

३. पारसियों के उपास्य देवता वैदिक देवताओं से मिलते हैं, यद्यपि पारसी उन्हें देवता नहीं कहते। पारसियों का मुख्य ईश्वर अहुरमजद या असुर महान कहलाता है। अर्यमन् के स्थान में आयर्मन्, मित्र के स्थान में मिथ्र, नाराशंस के स्थान में नर्योसन्हा, वृत्रघ्न के स्थान में वृत्र और भग के स्थान में बघ–ये उनके उपास्य हैं। वेदों में जैसा वरूण देवता का वर्णन है, उसी प्रकार का जन्दावस्ता में महान असुर का वर्णन है। वैदिक साहित्य में ३३ देवताओं का कथन है "त्रयस्त्रिंशद् वै देवा:"--ब्राह्मण, जन्दावस्ता में उनके स्थान पर ३३ रतु कहे गए हैं।

दोनों में एक भेद हैं वैदिक परिभाषा में देव शब्द का प्रयोग उत्कृष्ट अर्थों में होता है, जन्द की परिभाषा में वह बुरे अर्थ देता है। वहाँ परमात्मा को असुर कहा गया है। वेद में देव और असुर दोनों ही शब्द ईश्वर के लिए आते हैं, और उत्तम अर्थ देते हैं। ब्राह्मणों में असुर शब्द बुरे ही अर्थो में आता है, उसका अच्छा अर्थ बिल्कुल लुप्त हो गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों ने असुरों को देवताओं के सामने सदा नीचा दिखाया है। इस भिन्नता से दो बाते प्रतीत होती है। प्रथम तो यह कि पारसी धर्म के विचार वेदों से लिए गए हैं, ब्राह्मणों से नहीं। दूसरी बात यह कि ब्राह्मणों और जन्द के लेखकों के दिलों में एक दूसरे के लिए एक विशेष विरोध का भाव था, यही कारण था कि वे दोनों एक दूसरे के उपास्यों को नीचा दिखाने का यत्न करते थे। यह विषय मनोरंजक है और इसकी विस्तृत विवेचना बहुत से ऐतिहासिक रहस्य उद्‌घाटित कर सकती है, परन्तु उसके लिए यह उचित स्थान नहीं है।

४. दोनों के यज्ञों में बहुत समानता है। यज्ञों और यज्ञ की विधियों में बहुत सी बातें मिलती हैं। यज्ञ के लिए पारसियों के पास यस्त शब्द है। होता को वह जोता कहते हैं, अथर्वन् के स्थान में उनके पास अथवा शब्द है। इष्टि और आहुति पारसियों की इष्टि और आजुति है। यज्ञों की विधियाँ तक एक सी है। ज्योतिष्टोम, दर्श पौर्णमास आदि नामान्तर से जन्द में पाये जाते हैं। सोमवल्ली का नाम पारसियों में होम है।

५. पारसी लोगों के लिए यज्ञोपवीत का विधान है। गौ मारने तथा मांस खाने का निषेध है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त जन्दावस्ता में पाया जाता है। सृष्टि की उत्पत्ति का जन्दावस्ता में जो वर्णन है, वह वेदों और उपनिषदों के सृष्टि प्रकरण का स्मरण कराता है।

ऊपर के लेख से सिद्ध है कि पारसियों का यह धर्म जिसका उपदेश जन्दावस्त द्वारा जरदुश्त ने किया था, वैदिक धर्म का रूपान्तरण है। यह हम पहले दिखा आये हैं कि वेदों का समय जन्दावस्ता के समय से बहुत पहले का है। इससे स्पष्ट है कि जैसे भारत में वेदों से ब्राह्मण ग्रन्थों का धर्म उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार फारस में असुर धर्म विस्तृत हुआ। दोनों में भेद इतना ही है कि एक ने अपने मूल को याद रखा और स्वीकार किया, दूसरे ने उसे भुलाने का यत्न किया और भुला दिया।

# स्वामी दयानन्द की विचार-धारा

## पाखण्ड-खण्डिनी विजयते

### विमला पताका-

सुरभित पीत बौर से सुशोभितसहकार तरू को देखकर चित्त भी प्रफुल्लित हो उठता है। उसकी हरित पञ्चाच्छादित शाखाओं पर दृष्टि जाती है। स्थूल दृढ़ तने को देखा जाता है पर जो गुठली इसके निर्माण में गल गयी और जिसने अपने को गलाकर इस सुन्दर वृक्ष को प्रकट किया उसकी ओर किसका ध्यान जाता है।

भारत स्वतन्त्र है। खूब फल फूल रहा है, परन्तु सन् सत्तावन के विद्रोह के पश्चात् अंग्रेजों की विजय ने भारत को मूर्च्छित बना कर रख दिया था। उनकी सुँघाई हुई नशीली शिक्षा में भारतीयों को आत्म विस्मृति होने लगी थी। अराजकता से त्रस्त जनता अंग्रेजों के सुप्रबन्ध को देखकर महारानी विक्टोरिया को भगवती सीता से वरदान प्राप्त त्रिजटा (एक राक्षसी जो अशोक वाटिका में भगवती सीता की सेवा हितपूर्वक करती थी) का अवतार मानने लगे थे।

ऐसे समय पर जाति की मोहनिसा भंग करने के लिये महर्षि दयानन्द ने वेदों का पाञ्चजन्य फूका। सत्यार्थ प्रकाश की पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं-

१. अब अभाग्योदय से ओर आर्यों के आलस्य प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने को कथा ही क्या किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पदाक्रनत हो रहा है।

२. कोई कितना ही करे परन्तु स्वदेशीराज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

३. न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुख-दायक नहीं है।

४. अपना विजय करना आचार और पराजित होना अनाचार है।

५. जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करे तो बिना दारिद्रय और दु:ख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।

क्या बिना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है।

६. जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों को हत्या करने वाला जानियेगा।

७. जब से विदेशी माँसाहारी इस देश में आकर गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमश: आर्यों के दु:ख की बढ़ोतरी होती जाती है।

(दशम समुल्लास)

८. सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल सर्वोपरि एक राजा था।

९. इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम आर्य कुल में ही हुए थे।

(एकादश समुल्लास)

मत मतान्तर के खण्डन के लेखो में तो श्री स्वामी जी का मस्तिष्क काम कर रहा है परन्तु उक्त पंक्तियों में उनका हृदय क्रंदन कर रहा है।

श्री स्वामी जी के इस प्रचार का प्रभाव यह हुआ कि देश की मूर्च्छा भंग हो गयी। देशवासी अंगड़ाई लेकर खड़े होने लगे। सब क्रान्ति के सूत्रधार गुरू श्री श्याम जी कृष्णवर्मा ऋषि दयानन्द के ही शिष्य थे। भारत के गर्म दल के नेता लाला लाजपतराय जी, सरदार अजीतसिंह जी ऋषि दयानन्द के भक्त थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी पं. रामभजदत्त चौधरी आदि अनेक कांग्रेसी नेता आर्य समाज से ही प्रकट हुए। काँग्रेस का बड़े से बड़ा नेता भी, अत्यन्त प्रलोभन देकर भी, तलवे चाट कर भी मुसलमानों को अपने साथ पूर्ण रूपेण तथा अन्त तक न रख सका। जबकि आर्य युवकों के लिये पूज्य आदर्श पं. राम प्रसाद बिस्मिल के साथी माननीय अशफाकउल्ला खाँ बिस्मिल साहब के तरफदार अन्तः तक रहे और भारतमाता के बंधन काटते हुऐ फांसी पर झूल गये। काँग्रेस का मुहम्मद अली काम निकल जाने के बाद काँग्रेस को ठोकर मार कर लीग में जा मिला परन्तु आर्य समाज का मुहम्मद अली शाँति स्वरूप बनकर हाथों में सदा तिरंगा झंडा लिये रहा। अंतिम दिन तक धर्म और राष्ट्र का पक्का भक्त रहा।

ऋषि दयानन्द का विशाल आन्दोलन भारत की सर्वतोमुखी उन्नति के लिये था। भू-मण्डल भर में मित्र भाव फैलाने के लिये था। इस मर्म को ये उदरम्भरि पंडित और पाँव पुजाकर माल चरने वाले साधु और महन्त कैसे अनुभव कर सकते थे। न्याय वेदान्त और मीमाँसा के महान् पंडित तथा व्याकरण की बाल की खाल निकालने वाले वाराणसीय विद्वान् यहाँ तक नहीं पहुँच सकते थे। उनका संसार काशी और काशी नरेश के महलों तक ही था। पौराणिकों की प्रकाशित की गई एक विज्ञप्ति हमने पढ़ी। जिसका शीर्षक था-''स्वामी दयानन्द की हार'' आगे पढ़ा तो इन पौराणिकों के लिखे अनुसार ही स्वामी जी की विजय की ध्वनि निकली जो ध्वनि आज भी गूंज रही है। इन लोगों ने लिखा है कि श्री स्वामी जी राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द से और श्री भारतेन्दु जी से शास्त्रार्थ में परास्त हो गये। खुब तुक उड़ायी। जो लोक संस्कृत ज्ञान से शून्य थे उनसे शास्त्रार्थ कैसा ? एक थे अंग्रेजों के कृपापास उर्दू के मुंशी दूसरे थे हिन्दी कवि। धर्म के मर्म से दोनों वंछित थे। तीसरानाम श्री तर्क वाचस्पति तारा चरण जी का लिया हैं कि स्वामी जी ने पंडितों से पूछा कि मूर्ति-पूजा में वेद का प्रमाण कहाँ है तो श्री तर्क वाचस्पति जी ने कहा कि वेद ही प्रमाण है क्यों हैं वो श्री

स्वामी जी ने मनु का प्रमाण दिया इस पर तर्क वाचस्पति जी ने कहाँ कि वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने को आपने मनु का प्रमाण दिया तो स्मृतियों के आधार पर ही मूर्ति पूजा को प्रामाणिक मानिये इसे पर स्वामी जी चुप हो गए सारे यदि इनके लिखें को ही सत्य मान लिया जाये तो यही प्रमाणित हुआ कि तर्क वाचस्पति जी वेद में मूर्ति-पूजा न दिखा सकें। इस पर श्री स्वामी जी चुप हो गए। सारे यदि इनके लिखे को ही सत्य मान लिया जाये तो यही प्रमाणित हुआ कि तर्क वाचस्पति जी वेद में मूर्ति-पूजा को न दिखा सके। इस पर श्री स्वामी जी चुप न रहते तो क्या करते। श्री स्वामीजी को विश्वास हो गया कि वेद में मूर्ति-पूज्रा वास्तव में नहीं है तो ये बिचारे दिखाते कैसे ? बहाने बना रहे हैं। और आज भी बहाने बनाये जा रहे हैं, एक मूर्ख ने पत्रों में छपाया कि दस सहस्त्र रूपया इनाम जो वेद में मूर्ति पूजा को पाप सिद्ध कर दें। कितनी चालाकी भरी है इस प्रश्न में ? वेद में मूर्ति-पूजा, कब्र पूजा, पुस्तक पूजा का पृथक-पृथक निषेध किया जाये तो वेद का आकार बढ़ा हो जाये। अविद्या अंध विश्वास के सब ही काम वर्जित है। जब मूर्ति पूजा का विधान वेदों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में उपनिषद् में नहीं है फिर अवैधानिक काम को करना पुण्य हुआ वा पाप ?

मीमांसा ने धर्म का निरूपण करते हुए कहा कि-

चोदनालक्षणोर्थों धर्मः।

जिस कार्य के लिये वेद की प्रेरणा है वह धर्म है। मूर्ति-पूजा के लिये वेद की प्रेरणा नहीं अतः वह धर्म नहीं है और जो धर्म नहीं है वह अधर्म नहीं तो क्या है ? पंच महायज्ञ धर्म है। सर्वसम्मत है उस पर तो जोर देते नहीं केवल मूर्ति-पूजा को सिर पर उठा रखा है। ऐसे संकीर्ण लोगों से क्या शास्त्रार्थ स्वामीजी ने धर्म के शुद्ध स्वरूप को हमारे सामने रखा है जो अर्थ शास्त्र और वेद सम्मत है। कोई भी पौराणिक हमारे आदर्श महापुरूष राम एवम् कृष्ण द्वारा मूर्ति पूजा का प्रमाण वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्भागवत् में नहीं दिखा सकते राष्ट्र को स्वच्छ जीवन देने वाली है विचार धारा केवल एक वह है ऋषि दयानन्द की विचार धारा जिसका परीक्षण ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त हो चुका है। अनुभूत प्रयोग है। सर्वहित कर है। पर इसका प्रचार अवरूद्ध कम होता जा रहा है। आर्य समाज में भी अब नारे बाजी रह गयी है। 'कृणवन्तोविश्वमार्यम्' जयघोष से प्रचार कैसे हो जायेगा। वेद प्रचार मर रहा है। देश के नव युवक वर्ग में प्रचार का नाम नहीं। ग्रामों में प्रचार इन भजनों की बदौलत कभी-कभी हो जाता है। लड़ाई की जड़ संस्थायें पनप रही है। प्रचार मूर्च्छित है कि देश प्रचार तो समाप्त ही है। हमने आर्य समाज के एक नेता को लिखा कि अमरीका और इंग्लैंड में हरे राम, हरे कृष्ण का कीर्तन चल रहा है आज भी ओ३म् नाम का प्रचार कराये। उनका उत्तर आया कि सभी बात झूठ है। यह हैं हमारे नेताजी अपनी आँखें बन्द किये हुए हैं और एक उपदेशक को अन्धा बनाना चाहते है कारण है उनकी संकीर्ण पार्टी बाजी । अपनी पार्टी के मूर्ख को भी बाहर भेजेंगे परन्तु कितना ही बड़ा विद्वान् हो, अनुभवी हो यदि इनकी पार्टी का नहीं तो मूर्ख है। जो रोज काँग्रेस नष्ट कर रहा है। बस जब यह धाँधली तो इसके लिये आर्य जनता को चेतना है।

# 132 वां ऋषि स्मृति सम्मेलन की प्रमुख झलकियाँ

वरिष्ठ श्री अमृतलालजी का सम्मान करते हुए
माननीय श्री सज्जनसिंहजी कोठारी लोकायुक्त राजस्थान

प्राथमिक उपचार केन्द्र में परीक्षण करती हुई
डॉ.मोनिका शर्मा

पाण्डाल में उपस्थित महिलाएं एवं पुरूष

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17 Date Of Posting 9,10-10-2015

यज्ञ ब्रह्मा आचार्य श्री सत्यानन्दजी वेदवागीश

आचार्य श्री आर्य नरेशजी हिमाचल

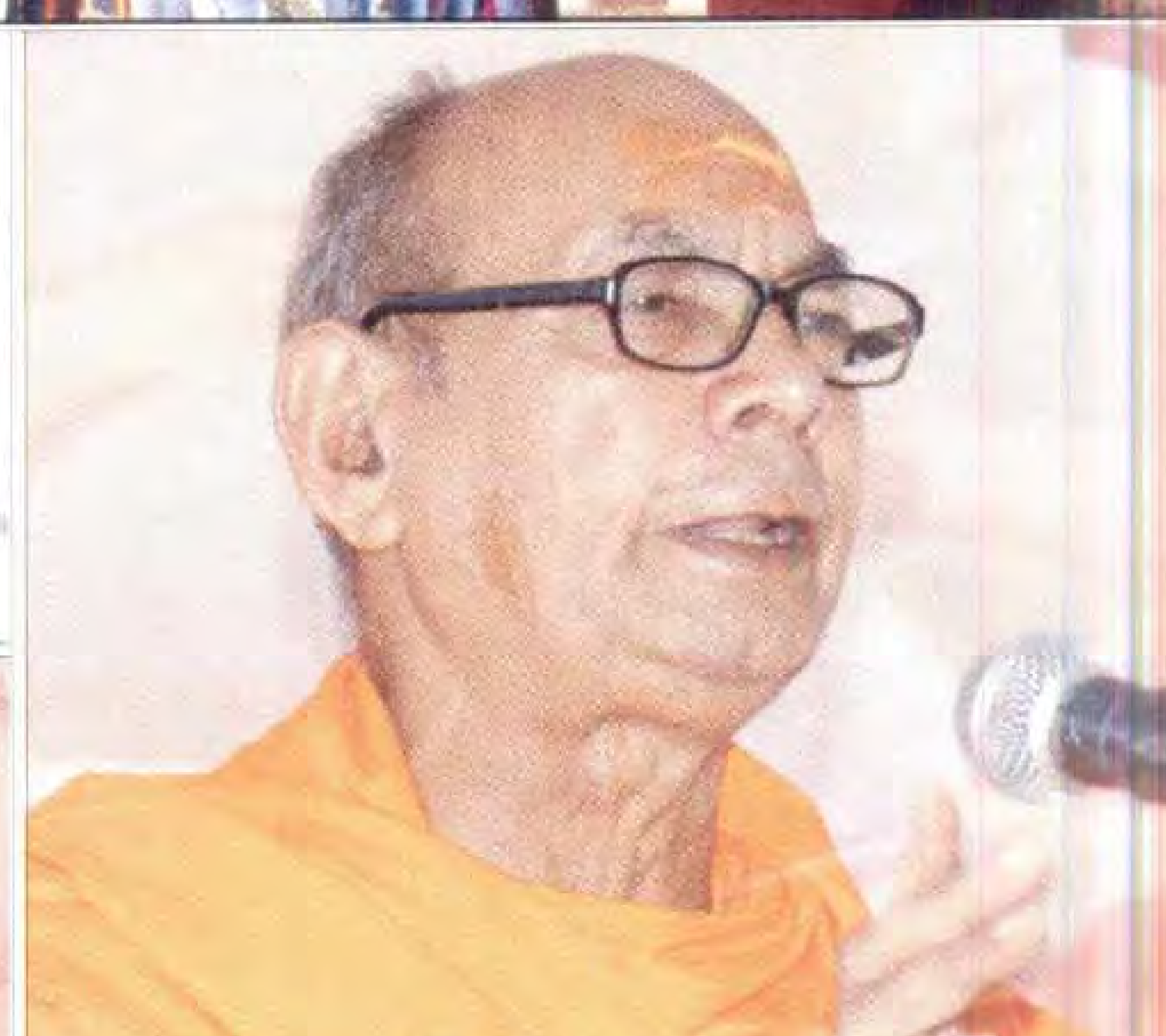
आचार्य स्वामी श्रीधर्मानन्दजी
नवापारा उड़ीसा वाले

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655